नातन

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

वक्तव्य

कुछ दिन हुए मौ० मुहम्मद नईमुर्रहमान, एम्० ए०, ने जरमनी के सुप्रसिद्ध नाटककार लेसिंग के "Nathan der Weize" का मूल जरमन से उर्दू में अनुवाद किया था जिसे हिंदुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०, ने सन् १९३० ई० में प्रकाशित किया। अब इसी उर्दू अनुवाद से मैंने यह हिंदी संस्करण संपादित किया है। प्रोफ़ेसर श्रीयुत् धीरेन्द्र वर्मा, एम्० ए०, ने इसकी आवृत्ति करके मुझे विशेष कृतार्थ किया है।

जनवरी १९३२ मि० अबुलफ़ज़्ल

विषयसूची

भूमिका

आजकल हमारे देश में जो उपद्रव उपस्थित है उसके कारणों में से एक बड़ा कारण यह है कि परस्पर लड़नेवाले एक दूसरे के धार्मिक मतों से अज्ञान हैं और प्रत्येक मतावलंबी संकीर्ण हृदय और अदूरदर्शिता से काम ले रहा है। दुर्भाग्यवश साहित्य भी ऐसा निकल रहा है जो एक को दूसरे से लड़ाने में सहायता दे रहा है। यदि दोनों ओर समझ होती और सहृदयता से काम लिया जाता तो जान पड़ता कि सत्य सब जगह और सब के पास है। हमारे देश की यह अवस्था कोई विचित्र नहीं है। यूरोप में भी ईसाई और मुसलमान एक दूसरे के शत्रु थे, परंतु जब प्रत्येक ने अपने २ स्थान पर ध्यान दिया तो दोनों ने अपनी संकीर्णता को स्वीकार किया। यह नहीं हो सका और न हो सकता है कि तर्क वितर्क का द्वार बंद हो जाय। परन्तु यूरोप ने बुद्धि का अनुसरण किया। इस विषय में "नातन" जैसे नाटकों ने आरंभ किया। मैं भी इसीसे आरंभ कर रहा हूँ। सद्भाव का बदला परमात्मा के हाथ है। मुझे आशा है कि जो कुछ "नातन" ने यूरोप में किया वही भारत में भी करेगा।

मुझे जो कुछ भी कहना है वह "नातन" शीर्षक प्रबंध में कह चुका हूँ। केवल इतना कहना और बाक़ी रह गया है कि मैंने इस नाटक को मूल जरमन से अनुवाद किया है। यूरोप की भाषाओं में उसके अनुवाद हो चुके हैं। अंगरेज़ी में भी हुआ है, परंतु मुझे पूर्ण

विश्वास है कि मेरा अनुवाद अंगरेज़ी अनुवाद से अवश्य अच्छा है। अधिक स्पष्ट करने के लिए मैंने इसके अंत में टिप्पणियाँ बढ़ा दी हैं जो इसके समझने में बहुत अधिक सहायता देंगी।

कैसा अच्छा हो जो मेरे देश के लोग इससे वही लाभ उठायें जो यूरोप ने उठाया है।

बेली रोड,
इलाहाबाद,
अगस्त १९२८

मुहम्मद नईमुर्रहमान

लेसिंग की जीवनी

जर्मनी देश के सैक्सनी प्रांत के कामेंत्स नगर (Kamenz) को यह असाधारण गौरव प्राप्त है कि उसने २२ जनवरी सन् १७२६ ई० को लेसिंग सा प्रसिद्ध व्यक्ति उत्पन्न किया। उसका पूरा नाम गौटहोल्ड इफ्राइम लेसिंग (Gotthold Ephraim Lessing) है। क्लिमेन्स लेसिंग (Clemens Lessing) जिसका नाम महादेश यूरोप की धार्मिक-संसार में विशेष उत्कर्ष और गौरव रखता है, उसके पूर्वपुरुषों में से था।

लेसिंग के जन्म के समय उसका पिता योहान गौटफ्रेड (Johann Gottfried) कामेंत्स नगर के संभ्रांत और प्रभावशाली पादरियों में से था। अपने साहस, कर्त्तव्यपालन में तत्परता और दीनदुःखियों पर अत्यंत प्रेम रखने के कारण उसने अपने नगरवासियों के हृदयों में घर कर लिया था। विटेनबर्ग (Wittenberg) के विश्वविद्यालय में उसने धार्मिक शिक्षा लाभ की, और अपने जीवन ही में एक उच्चकोटि के ग्रंथकार होने की प्रसिद्धि लाभ कर ली थी।

गौटफ्रेड के बारह बच्चे हुए। उनमें से केवल दो ऐसे थे जो शैशवकाल से स्वस्थ और जीवित रहकर युवावस्था को प्राप्त कर सके और अन्त में अपना जीवन सार्थक कर सके। इन्हीं भाग्यवानों में एक इफ्राइम लेसिंग भी था। लेसिंग बचपन ही से अत्यंत प्रसन्न, स्वस्थ, और मृदुस्वभाव था, और तभी से उसमें पढ़ने लिखने की ओर विशेष रुचि पाई जाती थी। उसकी शिक्षा

कामेंत्स की लेटिन पाठशाला में आरम्भ हुई। बाद में सन् १७४१ में उसे माइस्सेन (Meissen) की पाठशाला सेंट आफ़रा (St. Afra) में भेजा गया क्योंकि यहां उसे निःशुल्क शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया था। इस पाठशाला में रहने के दिनों में उसने पुरातत्व और गणित में इतनी उन्नति की कि उसका नाम तमाम पाठशाला में प्रसिद्ध हो गया। छः वर्ष के बाद सन् १७४६ में वह लाइपसीग (Leipzig) विश्वविद्यालय में धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रवेश हुआ। परन्तु इस विषय में उसका मन न लगा, और वह केवल पुरातत्व और विज्ञान के अध्ययन में मनोयोगपूर्वक लग गया। थोड़ेही दिनों में वह अपनी युवावस्था को अतिक्रम करके अपने साथियों से मित्रता बढ़ाने और एक स्वतंत्र और सभ्य सज्जन बनने की चेष्टा करने लगा। उसके विशेष मित्रों में वाइसे (Weisse) और मील्यूस (Mylius) उल्लेखयोग्य हैं जिन्होंने बाद में विद्या और विज्ञान के संसार में नाम पैदा किया। उन्हीं दिनों नाइबर (Neuber) नामक एक प्रसिद्ध और अनुभवी अभिनेत्री लाइपसीग में रहती थी जिसका प्रभाव नगर के कुछ संभ्रांत लोगों पर भी था। लेसिंग और वाइसे उसके तमाशों में बहुधा उपस्थित रहते थे। लेसिंग ने सेंट आफ़रा ही में "विद्वान् युवक" नामक एक नाटक लिखना आरंभ किया था, उसको अब समाप्त किया। और न केवल यह कि नाइबर ने उसे अत्यंत आनंद से स्वीकार किया वरन् शीघ्रही यह जनता के प्रिय नाटकों में गिना जाने लगा।

जैसा कि सांसारिक लोगों का नियम है, लोगों ने लेसिंग की इस पद्धति को लंपटता और कुप्रवृत्ति समझा, और शीघ्रही

राई का पर्वत बनने लगे। पिता ने सुना तो घबरा कर बेटे को कामेंत्स वापस बुला लिया। घर में थोड़ेही दिनों रहने से उसके मातापिता को उसकी सच्चरित्रता का प्रमाण मिल गया, और उसे इस शर्त पर फिर लाइप्सीग जाने की अनुमति मिली कि वहाँ पहुँच कर चिकित्साशास्त्र का अध्ययन आरंभ करे। अतएव लाइप्सीग लौट आकर वह कुछ दिनों तक चिकित्साशास्त्र का अध्ययन करता रहा। परंतु कैसा चिकित्साशास्त्र? उसे यह धुन थी कि मैं नाटक लिखने वालों में नाम पैदा करूँ। नतीजा यह हुआ कि जब तक नाइबर का थियेटर रहा उसका प्रायः सब समय नाटक और तमाशेही में बीतता। अंत में जब सन् १७४८ में नाटक की कंपनी के टूट जाने से लाइप्त-सीग में लेसिंग के मनोरंजन का कारण भी शेष हो गया, तब वह वहाँ से विटेनवर्ग गया, और वहाँ से बरलिन पहुँचा। यहाँ उसके मित्र मील्यूस ने उसे एक समाचारपत्र के संपादन में लगा दिया। वह इस काम में तीन वर्ष तक वहाँ रहा। वहीं रह कर उसने रोलिन (Rollin) के इतिहास का अनुवाद किया, कुछ नाटक लिखे (जो उसके प्रारंभ के नाटकों में सब से अच्छे समझे जाते हैं) और मील्यूस से मिलकर एक पत्रिका का संपादन करना आरंभ किया जिसमें नाटक और उसी संबंध के और २ विषयों पर लेख होते थे। परंतु यह पत्रिका शीघ्रही बंद हो गई। सन् १७५१ में उसे फौस गेज़ेट (Voss Gazette) में समालोचक का पद मिला। इस संबंध से उसे कुछ उच्चकोटि के जरमन और फ्रान्सीसी साहित्य की पुस्तकों के देखने का अवसर मिला। इन्हीं दिनों और इन्हीं कारणों से उसे वुल्तर (Voltaire) और उसके

विचारों को जानने का भी अवसर मिला। परंतु उसका पिता इस जीवनपद्धति से प्रसन्न न था, और अभी एक वर्ष भी पूरा न हुआ था कि लेसिंग को विटेनबर्ग जाकर शिक्षा पूरी करने की आज्ञा मिली। वह वाध्य होकर वर्ष के शेष भाग में फिर विटेनबर्ग को रवाना हुआ। इस बार वह वहाँ प्रायः एक वर्ष रहा, और एम्० ए० की डिगरी प्राप्त करने के बाद बरलिन वापस गया। इसके बाद के तीन वर्ष उसके जीवन का वह भाग है जिसमें उसे बिलकुल अवकाश ही न था। पहले उसने पुस्तकविक्रेताओं के लिए बहुत सी पुस्तकों के अनुवाद किये, फिर कुछ दिनों तक नाटक के संबंध में एक पत्रिका निकालता रहा, और संभवतः इन्हीं दिनों अपने जरमन और लेटिन कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित किया। इन कविताओं की उच्च कल्पना, साहित्यिक सौंदर्य और संगीत के जादू ने इस विषय के समालोचकों को मोहित कर लिया। जरमन विद्यार्थी तो उन्हीं कविताओं के कारण आज तक लेसिंग के भक्त हैं। साहित्यिक संसार में इतनी प्रसिद्धि लाभ करके वह एक बार फिर "फ़ोस गेज़ेट" में समालोचक के पद पर नियुक्त हुआ। और इस बार उसने कुछ अत्यंत प्रभावशाली लेख लिखे। इनकी संख्याओं का अनुमान इससे हो सकता है कि उसने इनमें से छूटे छूटे लेखों और कविताओं को ६ भागों में प्रकाशित किया। उस समय की विद्वन्मंडली में यह उच्चकोटि के समझे गये और इन्होंने अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। इसी संग्रह में उसके पत्रों का एक समूह भी है। जरमन साहित्य में इस ढंग और इस स्वतंत्र-स्पष्टता के साथ साहित्यिक विषय पर पहली ही बार विचार किया गया। इन

दिनों के ग्रंथों में एक और आवश्यक चीज़ उसके वह लेख हैं जिनके संग्रह का नाम "मुक्ति" (Rettungen) है, और जिनका उद्देश्य यह था कि होरेस (Horace) कवि को उसके कटु समालोचकों के इस अन्यायपूर्ण दोषारोप से बचाया जाये कि वह कामासक्त और भीरु था। इसके अतिरिक्त एक और संग्रह में ईसाई धर्म के संबंध में लेख हैं। एक मनोरंजक बात यह है कि इन्हीं में से एक ज़बरदस्त लेख में लेसिंग महात्मा मुहम्मद पर विश्वास प्रकट करता है और इसलामधर्म का पोषण करता है। इसी में तीन नये नाटक "स्वतंत्र विचार" (Der Friedenker), "यहूदी" (Die Juden) और "स्त्रियों का शत्रु" (Der Misogyn) भी थे जो उस समय के सामाजिक नाटकोंमें श्रेष्ठतम समझे गये हैं। इन नाटकों के पढ़ने से ज्ञान पड़ता है कि ग्रंथकार पर फ्रान्सीसी समाज का रंग गहरा है। सन् १७५५ में एक और नाटक "मिस सारा सिंपसन" (Miss Sara Simpson) प्रकाशित हुआ। यद्यपि इसमें कुछ त्रुटियाँ हैं परंतु इस नाटक ने सब से बड़ा काम यह किया कि उन दिनों के जरमन ग्रंथकारों पर यह प्रमाणित कर दिया कि एक जरमन नाटक में केवल "बड़े २ आदमियों" के जीवन ही से नहीं, वरन् साधारण लोगों के जीवन से भी बड़ी २ घटनाएँ और बातें ग्रहण की जा सकती हैं। सन् १७५५ के शेष भाग में एक बार फिर बरलिन को छोड़ कर लाइप्तसीग का रास्ता लिया, और वहाँ पहुँच कर उसने अपने मित्र मौस मेंडेल्सोन (Moss Mendelssohn) के साथ "पोप आइन मेटा फ़िज़ीकर" (Pope ein Metaphysiker) नाम एक पुस्तक लिखी जिसमें यह प्रमाणित

किया कि एक कवि और एक वैज्ञानिक में ठीक २ तुलना नहीं हो सकती ।

सन् १७५६ के शरत्काल में वह बरलिन के एक वणिक् के साथ इंगलैंड की यात्रा के लिए रवाना हुआ। परंतु सात वर्ष वाले युद्ध ने उसे ऐम्सटरडम से आगे न बढ़ने दिया। बाध्य होकर उसे लाइप्तसीग को लौट आना पड़ा। इन दिनों उसने कुछ अंगरेज़ी पुस्तकों का अनुवाद किया। कुछ दिनों के बाद परिस्थिति कुछ ऐसी बदल गई कि लेसिंग को फिर बरलिन वापस आना पड़ा।

बरलिन की इस तीसरी बार की यात्रा में उसने अपने आलोचनात्मक "साहित्यिक पत्र" (Literaturbriefe) प्रकाशित करके साहित्य संसार में और अधिक प्रसिद्धि लाभ की। इन पत्रों की वाग्मिता, नवीनता, और उच्च विचार आज भी वैसे ही नये हैं जैसे कि उन दिनों में थे। सन् १७५९ में उसका एक जरमन नाटक "फ़िलोतस" (Philotus), कुछ और कहानियाँ और क़िस्से प्रकाशित हुए। इन्हीं के साथ २ उसने कहानियाँ, समाज, और नाटक पर अत्यंत ज़ोरदार समालोचनात्मक विचार प्रकट किये हैं। समालोचना के हिसाब से ये कहानियाँ उसके उच्चतम लेखों में गिनी जाती हैं, और नैतिक प्रभाव उत्पन्न करने में यह जरमन भाषा की समस्त नैतिक कहानियों में श्रेष्ठ हैं। सच यह है कि यह गुण केवल ग्रंथकार के ज़ोरदार शब्दों और सहज स्वभाव ने उत्पन्न किया है।

सन् १७६० में अपने साहित्यिक कार्यों से घबराकर केवल परिवर्तन के ख़्याल से वह ब्रेसलाव (Breslau) गया, जहाँ उसे

ताउइंत्साइन (Tauenzein, प्रशिया के सेनापति और गवर्नर के सेक्रेटरी) का पद मिल गया। प्रायः पाँच वर्ष बाद, सन १७६५ में उसने इस पद को छोड़ दिया, और कार्मेंत्स में अपने शरीर मां बाप से मिल कर लाइप्सीग होता हुआ फिर बरलिन पहुँचा। सन् १७६६ में उसकी एक ज़बरदस्त किताब "लाउकून" (Laocoon) और सन् १७६७ में प्रसिद्ध नाटक "मिन्ना फ़ौन बार्नहेल्म" (Minna von Barnhelm) प्रकाशित हुए। इसी वर्ष में वह हांबूर्ग (Hamburg) पहुँचा, और अपने एक मित्र बोदे (Bode) से मिल कर उसने एक नाटक-शाला और एक मुद्रालय स्थापित किया जिनके साथ उसके भविष्य की बहुत सी आशाएँ एकत्रित थीं। परन्तु न नाटकशाला ने और न मुद्रालय ने उसकी सहायता की। दोनों ही के कारण उसके सिर पर और भी बहुत से ऋण चढ़ गये। हामबूर्ग में भी वह लिखता ही रहा। उसकी पुस्तक "नाटक के मूलतत्व" (Hamburgische Dramaturgie) इन्हीं दिनों की रचना है। इस पुस्तक में हामबूर्ग के थिएटर के नाटकों की समालोचना है। उसने सब से बड़ा काम यह किया कि जरमनी के नाटक लेखकों को सदा के लिए फ़ान्सीसी-जरमन नाटकों के दासत्व की शृंखला से मुक्त करके यूनान और इंगलैंड, विशेषतः शेक्सपियर, की सच्ची अलौकिक जरमन पद्धति की ओर फेर दिया।

सन् १७७० में लेसिङ्ग ने "उलफ़ेन बुएत्तल" (Wolfenbüttel) के पुस्तकालय में अध्यक्ष का पद प्राप्त किया। और जीवन का शेष भाग इसी जगह बिताने का संकल्प कर लिया। परंतु हामबूर्ग के दिनों का ऋण, मित्रों से जुदाई, और शरीर की

निर्बलता के कारण वह दिन दिन अधिक निराशा और घबराहट में रहने लगा। अन्त में इन कष्टों से घबरा कर सन् १७७५ में चित्तविनोदनार्थ वह घर से निकला और पूरे नौ महीने तक इटली में यात्रा करता रहा। सन् १७७६ में उसने हामबूर्ग के एक सौदागर की विधवा ईवा कोइनीग (Eva König) से विवाह किया। परन्तु दोही वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गई।

इन विपत्ति के दिनों में भी वह संसार को अपनी साहित्यिक रचनाओं से धनी बनाता रहा, विशेषकर धार्मिक विषय के संबंध में उसने कई ज़ोरदार लेख प्रकाशित किये। सन् १७७२ में उसका "इमीलिया गालोती" (Emilia Galotti) नामक जरमन नाटक प्रकाशित हुआ जो अपने सादेपन, तेज़ी, और ज़ोर के कारण बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त उसने उल्फ़ेन बोएत्तेल के पुस्तकालय से यथोचित लाभ उठाया, और सन् १७७३ में उसके लेखों का एक संग्रह "इतिहास और साहित्य" (Zur Geschichte und Literatur) के नाम से प्रकाशित होना आरंभ हुआ और सन् १७७८ तक जारी रहा। इसके बाद कई लेख और पत्र निकले जिनका विषय विशेषतया ईसाई धर्म की व्याख्या और समालोचना थी। सन् १७७८ और १७७९ का सब से बड़ा साहित्यिक कार्य "बुद्धिमान् नातन" (Nathan der Weise) है। इसके बाद सन् १७८० में "मनुष्य की शिक्षा (Die Erziehung des Menschengeschlechts) प्रकाशित हुई जिसका पहला भाग हामबूर्ग के संग्रह में सन् १७७७ ही में प्रकाशित हो चुका था। इस विषय के विद्वानों का विचार है कि

यह लेसिंग की अंतिम सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। संक्षेप में इस पुस्तक का सार इन मूलतत्वों के रूप में वर्णन किया जा सकता है— (१) प्रत्येक धर्म ने मनुष्य की आत्मिक उन्नति और विकास में समान भाग लिया है। (२) इतिहास के अध्ययन करने से जान पड़ता है कि उन्नति के कुछ विशेष नियम हैं जिनके अनुसार उसका विकास होता है और यह आवश्यक है कि संसार अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कभी कभी अधोमुख भी चला करे।

लेसिंग के अंतिम दिनों की एक और अच्छी पुस्तक "अरनस्त और फ़ालक" (Ernst und Falk) [सन् १७७७–८०] यद्यपि स्पष्टत: फ्रीमेसन के संबंध में है, परंतु सचमुच धार्मिक अंधभाव और संकीर्णता के विरुद्ध लिखी गई है। सन् १७८० में साहित्यिक परिश्रमों के आधिक्य और नाना प्रकार की चिंताओं ने उसके स्वास्थ्य को ऐसा बिगाड़ा कि थोड़े ही दिनों में बीमार पड़कर सन् १७८१ में २२ जनवरी को ब्रून्सविक (Brunswick) में उसका देहांत हो गया।

लेसिंग मझोले डील का हृष्ट पुष्ट, देखने में रूखा परंतु वास्तव में नम्रस्वभाव का, समझदार, समालोचक, दर्शनशास्त्रवेत्ता, नाटक-लेखक, और धार्मिक विद्वान् था। वह अपनी बेबाकी, निडर-स्वभाव, निर्मल आत्मा, स्वाधीनप्रकृति और सच्चरित्रता में लूथर से कुछ कम न था। एक ऐसे समय में जब प्रत्येक लेखक ने अपना अलग २ दल बना रखा था, यह निडर होकर अपने विचार के प्रचार में लगा था। न उसे अपने विरुद्ध षड्यंत्र के होने की चिंता थी, न लोकप्रियता की धुन। उसकी सफलता का एक स्पष्ट प्रमाण यह है कि उसके जीवनकाल ही में उसके देश के नवयुवक

ग्रंथकारों और विद्वानों ने उसीका अनुसरण करना आरंभ कर दिया था। सुविख्यात जर्मन ग्रंथकार याकोबी (Jacobi) उसके विषय में कहा करता था कि "वह दार्शनिकों का राजा है"। उसकी मृत्यु पर स्वयं गोयते (Goethe) ने यह लिखा था कि "उसकी मृत्यु से हमारी जितनी अधिक हानि हुई है हम उसका किसी प्रकार ठीक हिसाब नहीं कर सकते"। वह जरमनी के उन आनेवाले लेखकों और दार्शनिकों का अग्रगामी और उनके विचारों का सच्चा संस्थापक था जिनके दम से जरमनी ने विद्या और ऐश्वर्य में अग्रगण्य होने का पद प्राप्त कर लिया। समालोचना और गंभीर विचार उसका विशेष विषय था, और यद्यपि उसने अपने आप को किसी विशेष दर्शन के अनुयायियों में नहीं गिना तथापि जिस सौंदर्य और शक्ति से उसने समालोचना के विषय को निबाहा विद्या और विज्ञान में उसके मूलतत्व निर्धारित किये और ललितकला, काव्य, नाटक, और धर्म पर जिस ढंग से उसने विचार किया यह उसी का भाग था। यद्यपि आज उन विचारों और भावों के लोकसंमत होने के कारण वह अब नये नहीं हैं, तथापि उसके समय में वह निश्चितरूप से सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित हो चुके हैं। निष्पक्षभाव से देखा जाय तो आज भी उनकी सरसता और माधुर्य उसी प्रकार उपस्थित है जैसी उस समय में थी।

लेसिंग की लेखनशैली

लेखनशैली के विचार से लेसिंग यूरोप महादेश के श्रेष्ठ उच्चतम कोटि के लेखकों में गिना जाता है। इसकी उक्तियों की बनावट सीधी सादी और स्पष्ट, गम्भीर और दृढ़ होती है। अपने

वर्णनों में वह सरस (यद्यपि कभी कभी बेकार) अलंकारों और प्राकृतिक चित्रों के सौंदर्य से पाठकों के मस्तिष्क को अम्लान और उनके ध्यान को आकर्षित किये रखता है। छोटे छोटे चुटकुलों से लेख में सरसता और माधुर्य उत्पन्न कर देता है। बहुधा इस प्रकार जादू बांधता है कि पाठक को संदेह होने लगता है कि लेखक मूलविषय और उद्देश से भटक गया है यद्यपि कुछ मुहूर्त के बाद ही मालूम हो जाता है कि बात इससे उलटी है। इंगलैंड के प्रसिद्ध विद्वान् और समालोचक कारलाइल (Carlyle) का मत लेसिंग के संबंध में यह था कि "एक कवि, समालोचक, वैज्ञानिक, और वक्ता के रूप में लेसिंग के लेखों का ढंग अंगरेज़ों की प्रकृति और स्वभाव के अत्यंत उपयुक्त है। उसके वर्णन अननुकरणीय, मनोमुग्धकारी, और प्रसादगुणयुक्त हैं। वह बिलकुल प्रशांतभाव से बात करता है। उसकी उक्तियों में न किसी प्रकार की उत्तेजना है, न विरोध। उनमें वाक्पद्धति बड़ी निपुणता के साथ नगीनेकी तरह जड़ी होती है, बेकार बाल की खाल खींचना उनमें नहीं। उसके लेख ओजस्वी, दर्पण की तरह निर्मल, और भावपूर्ण होते हैं।" सार यह है कि लेसिंग एक मनोमुग्धकारी उत्कृष्ट भावसंपन्न और सुललित लेखक है।

जर्मन नाटक और लेसिंग

विद्या और कला की उन्नति के लिए और जितनी वस्तुएँ आवश्यक हैं उनमें सब से बड़ी शासकवर्ग और उसके प्रधान कर्मचारियों में इसका प्रचार है। उस समय तक जरमनी के राजाओं का यह हाल था कि वह जरमनी के बदले इटली के

नाटकों और तमाशों पर जान देते थे। इस लिए वह साधारण-तया उन्हीं को आश्रय देते और वहीं के नाटक खेलनेवालों को उपकृत करते। उन दिनों उस देश की शोचनीय दशा इससे बढ़ कर और क्या हो सकती है? यद्यपि उन दिनों इटली के बड़े २ अभिनेता भी एक भाँड़ या नकल करनेवाले से कुछ अधिक श्रेष्ट न थे, परंतु अपने बनाये हुए भोंडे और भद्दे तमाशों से किसी न किसी प्रकार अपने खेल देखनेवालों को खुश करने और खुश रखने में सफल हो जाते थे। इन सब में अच्छा आदमी वेल्तेन (Velthen) समझा जाता है जिसने अपने साधारण नाटकों में फ्रान्स के सुविख्यात नाटकलेखक मोलियर(Moliere) के नाटकों के कुछ अंश अत्यंत कुशलता से मिला लिये थे। संभव है यही व्यक्ति जरमनी में फ्रान्स के नाटकों के लोकप्रिय होने का कारण हुआ हो। कारण बहुत दिनों तक जरमन नाटक पर फ्रान्स का रंग विशेषरूप से चढ़ा रहा है। सत्रहवीं शताब्दी जरमनी के साहित्य में नाटक के अंग का कहीं पता तक न था। और कदा-चित् यही कारण था कि उस समय के पादरी उसे इतना निकृष्ट और बेकार समझते थे कि उन्होंने उसे निषिद्ध कर रखा था।

वेल्तेन के पश्चात् वीलांद (Wieland) और क्लोपश्तोक (Klostock) से जरमन नाटक के समय का आरंभ होता है। यद्यपि लेसिंग इन्हीं के पश्चात् हुआ परंतु इन दोनों में भी जो पुराना रंग पाया जाता है उससे वह बहुत दूर है। सच तो यह है कि गोयते से पहले के लेखकों में केवल एक यही व्यक्ति है जिसके लेख जरमन के लोग आज भी अपने विचारों के निकटवर्त्ती और अपनी आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त पाते हैं।

लेसिंग की कल्पनाओं का सब से अच्छा अनुमान उसके नाटकों से ही होता है। इनमें उसके नाटक मिन्ना फ़ौन बर्नहेल्म (Minne von Bernhelm), इमीलिया गालोती (Emilia Galotti) और नातान दर वाइज़े (Nathan der Weise) विशेष रूप से उल्लेखयोग्य हैं। उसके नाटकों के पात्र के निर्मल और सुस्पष्ट चित्र, भावों की नियमित और स्वाभाविक शृंखला, और वाक्यों की स्पष्टता, माधुर्य, वाग्मिता, और मनोहर शृंखला ये कुछ ऐसी बातें हैं कि उनके द्वारा उसे यदि पूरे संसार के नहीं तो कम से कम जरमनी के उच्चकोटि के नाटकलेखकों की प्रथम श्रेणी में अवश्य स्थान देना उचित है। एक ओर तो उसकी कठोर परंतु उचित और विवेकपूर्ण तीव्र समालोचनाएँ, और दूसरी ओर उसके ये नाटक—इन सब ने मिलकर लोगों के मस्तिष्कों को एक उचित मूलतत्त्व की ओर फेर दिया, और नाटकलेखकों को इटली और फ़्रान्स के मानसिक दासत्व से स्वाधीन कर दिया।

नातन

लेसिंग का नाटक "बुद्धिमान नातन" जिसका अनुवाद हम "नातन" के नाम से पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर रहे हैं, सन् १७७९ के आरंभ में प्रकाशित हुआ था यद्यपि अपने प्रकाशित होने से बहुत पहले इसका मूलरूप ग्रंथकार के मस्तिष्क में उपस्थित था, और सन् १७७६ में वह इसके रूप और विषय पर अपने कई मित्रों से तर्क और परामर्श भी कर चुका था, परंतु कुछ बातें ऐसी उपस्थित हुईं कि यह सन् १७७९ से पहले प्रकाशित न हो सका।

इस पुस्तक के प्रकाशित होने के प्रायः दस वर्ष पहले से लेसिंग धार्मिक तर्क वितर्क में अत्यंत आग्रह के साथ भाग ले रहा था। इन शास्त्रार्थों पर उसने कई ओजस्वी पुस्तिकाएँ लिखीं जो Wolfenbüttel Fragments के नाम से प्रकाशित हुईं। ये पुस्तिकाएँ उसके उत्कृष्ट लेखों में से हैं। और पाश्चात्य देश के धार्मिक विचार और विश्वास की परंपरा में उन्होंने बहुत कुछ सहायता दी है। इन पुस्तिकाओं में उसने ईसाईधर्म के विशेष सम्प्रदायों से आरम्भ करके क्रमशः धर्म पर एक दृष्टि डाली है, और अत्यंत उदारता के साथ धर्मों में तुलना और सादृश्य दिखाकर विवेकपूर्ण प्रमाण और वचनों से अत्यंत दृढ़तापूर्वक ये बातें प्रमाणित की हैं कि—

(१) आत्मिक जीवन में अनुभव-शक्ति से अधिक काम लेना उचित है। मनुष्य को आत्मा की सत्ता का अवश्य अनुभव करना उचित है। मनुष्यों के पारस्परिक आत्मिक संबंध के भावों को इसी शक्तिद्वारा समझना उचित है। प्रत्यक्ष अवस्थाओं घटनाओं अथवा वचनों के आधार पर इसका निर्णय करना ठीक नहीं है। जब तक ऐसा न किया जायगा तब तक न तो "दिल से दिल को राह है" का अर्थ समझ में आ सकेगा, और न उसकी सत्यता का निश्चय हो सकेगा।

(२) यह संभव है कि कोई धर्म संपूर्णतया अथवा प्रत्येक युग के निमित्त सत्य और उपयोगी प्रमाणित न हो सके, परंतु यह बहुत संभव है कि वही धर्म कम से कम एक विशेष युग और नियमित समय के निमित्त किसी जाति और देश की आवश्यकताओं के निमित्त ठीक, पर्याप्त, और उपयोगी प्रमाणित हो।

अतएव यह अत्यंत भ्रांत और अनुपयोगी बात है कि उस धर्म को एकबारगी भ्रांत और बेकार समझ लिया जाय। ऐसे विचार प्रतिपादन करने से पहले जिस जाति ने उस धर्म को ग्रहण किया हो उसके देश और मातृभूमि (और विशेषकर उस धर्म की उन्नति के समय) की अवस्था को ध्यान से अध्ययन करना और अच्छी तरह समझ लेना उचित है।

(३) इसमें संदेह नहीं कि पृथ्वी के साधारण इतिहास और धार्मिक इतिहास में हमको ऐसी बहुत सी घटनाएँ मिलती हैं जिनमें एक धार्मिक कार्य के विरोध से बहुत कुछ उपद्रव हुआ है। परंतु इतिहास ही के पाठ से यह भी प्रमाणित होता है कि मनुष्य क्रमशः एक ऐसे अखिलब्रह्मांड की गति की ओर बढ़ता चला जाता है जिसमें साधारण नैतिक और मानसिक उन्नति प्रच्छन्न है और वह उसे एक दिन प्राप्त करके रहता है। इसलिए एक दूसरे का खंडन करने के बदले अच्छा यह है कि हम उस प्रगति में एक दूसरे की ऐसी सहायता करें कि वह शुभ मुहूर्त अति शीघ्र आ जाय कि जब केवल एक देश ही नहीं वरन् सारे पृथ्वी के मनुष्य एक बड़े भ्रातृमण्डल के अंग बन जाँय।

(४) सच्चरित्रता, सज्जनता, उत्कर्ष किसी विशेष जाति अथवा किसी विशेष धर्म को माननेवालों का भाग नहीं है, वरन् प्रत्येक धर्म, प्रत्येक मत, प्रेत्येक विश्वास के लोगों में ये गुण उत्पन्न हो सकते हैं, और यह निश्चित है कि होते भी हैं। यह तो स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था में किसी विशेष धर्म या विश्वास के लोगों को कदापि यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह दूसरे धर्म अथवा मत के लोगों को इन गुणों से च्युत समझकर उनपर अनुचित

कठोरता करें अथवा उनसे घृणा करें। वरन् प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक जाति को उचित है कि प्रत्येक दूसरे मनुष्य और प्रत्येक दूसरी जाति के विश्वास और मत के अनुयायिओं के साथ सौहार्द्य बरतें और उसे वास्तविक समझने की चेष्टा करें कि जिसमें परस्पर के मनोमालिन्य दूर हो जायँ, विरोध के मूल पर कुठाराघात हो, और सब के हृदय मिलकर एक हो जायँ।

इन चारों बातों में से यह अंतिम बात "बुद्धिमान्" नातन में सब से अधिक और इतनी अधिक प्रत्यक्ष है कि बहुधा विचारशील पाठक उसके केवल इसी एक सत्य से ऐसे मुग्ध हो गये हैं कि वे सारे गुण और माधुर्य जो लेसिंग ने इस नाटक में उत्पन्न किये हैं उनकी दृष्टि से ओझल हो गये हैं, और यदि कोई प्रभाव शेष रह जाता है तो वह इसी उपरोक्त वा अन्य बातों की सत्यता के सम्बन्ध में है। इसी आधार पर मुझे विश्वास है कि मेरे देश के पाठकों पर भी यही प्रभाव पड़ेगा और उनके हृदयों में भी यही अंतिम चित्र पूर्ण रूप से अंकित हो जायगा। मैंने इसी विचार, वरन् विश्वास को दृष्टि में रखकर इस अनुवाद का कष्ट उठाया है। यदि मेरी जन्मभूमि के लोगों पर इस नाटक का यह प्रभाव न पड़ा, तो मुझे दुःख होगा और मैं समझूंगा कि मेरा परिश्रम निष्फल हुआ।

मैं इसको स्वीकार करता हूँ कि कुछ लोग "बुद्धिमान् नातन" को लेसिंग जैसे ग्रंथकर्त्ता की सबसे बड़ी कृति नहीं कहेंगे परन्तु न्याय को छोड़ना उचित नहीं। मैं, और मैं क्या, प्रत्येक समझदार इसको अनुभव करेगा कि संभव है कि इसमें कुछ दोष भी हों और कदाचित् इसको रंगमंच पर लाने में कठिनाइयां

हों, तथापि इसमें कदापि अत्युक्ति नहीं है कि यह नाटक जिस उद्देश्य से लिखा गया है उसमें ग्रंथकार को अत्यंत आश्चर्य-जनक सफलता हुई है। अतएव यह कहना बिल्कुल ठीक है कि यह नाटक यूरोप की अट्ठारहवीं शताब्दी के उच्चतम सफल नाटकों में से है। केवल एक नातन यहूदी ही के व्यक्तित्व को ध्यान से देखिए कि ग्रंथकार ने किस सौंदर्य और माधुर्य के साथ इस बदनाम जाति के एक व्यक्ति की प्रकृति के उच्चतम मूल नियम का आदर्श बनाकर दिखाया है और बताया है कि मनुष्य को केवल कुछ धार्मिक प्रश्नों की श्रृंखला में न जकड़ जाना चाहिए वरन् एक निष्काम बे-लगाव स्वाधीन मनुष्यत्व के विशेष गुणों को अपने आप में उत्पन्न करना उचित है, क्योंकि स्वाधीनता के साथ सच्चरित्रता, निडर, सत्यता, निष्काम प्रेम ही न केवल मनुष्य को पशु से भिन्न करता है, वरन् यही गुण मनुष्यत्व के प्राण, मनुष्यत्व के सारतत्त्व हैं, और इन्हीं से मनुष्य समाज का गौरव विकसित होकर और निखरकर प्रकृति की एकता का उद्देश पूर्ण करता है। इस नाटक के प्रत्येक पात्र के भाव वर्णन किये जायँ तो बहुत विस्तार की आवश्यकता होगी। संक्षेप यह कि यदि अन्य-पात्रों को भी देखिए तो प्रतीत होगा कि ग्रंथकार की मुग्ध-कारिणी लेखनी ने इनमें क्या २ गुण उत्पन्न किये हैं। एक बार नहीं, बार २ ऐसे लेख और बचन आप को दृष्टिगोचर होते हैं जो आपके मस्तिष्क और मन पर जम जाते हैं। और आपको स्वीकार करना पड़ता है कि उनमें से प्रत्येक में एक गंभीरता और स्वाभा-विकता है। जो स्वयं सरल प्रकृति न हो वह मनुष्य स्वभाव को ठीक २ नहीं समझ सकता, और जो उसको न समझे वह अच्छा

नाटक नहीं लिख सकता, और जो वास्तविक मनोहर लेखक न हो उससे यह मनोहर वाक्य नहीं निकल सकता। किसी साधारण लेखक के वश का तो यह रोग कदापि नहीं है।

यह भी ठीक है कि जो ख्याति और लोकप्रियता इस नाटक को बाद में प्राप्त हुई वह इसके प्रकाशित होने और रंगमंच पर लाये जाने के समय नहीं हुई। इसके दो कारण बताये जाते हैं। एक कारण यह था कि इसके प्रकाशित होने से पहले लेसिंग विशेषरूप से ईसाईधर्म को संकीर्ण दृष्टि के विरुद्ध और साधारणतया धार्मिक सहृदयता की पृष्ठपोषकता में कई ओजस्वी लेख लिख चुका था, जिसके कारण उस समय के बहुत से ईसाई विद्वान् (और उनके प्रभाव से जनसाधारण) उसके विरुद्ध हो गये थे। लेसिंग के गुणदोषनिरूपण से लोगों को उससे घृणा हो गई थी, और वे उससे डरते भी थे। परंतु यह वीर, जिसके विषय में कहा जाता है कि स्वयं लूथर भी निर्भीकता और स्वाधीनता के भावों में इसके सामने कुछ न था, उसी प्रकार अपने विचारों पर दृढ़ रहा और बिल्कुल निडर होकर उसकी घोषणा करता रहा। स्पष्ट ही है कि ऐसी अवस्था में जिस रंगमंच पर "बुद्धिमान् नातन" जैसी धार्मिक सहृदयता का पाठ दिया जा रहा हो आरंभ में उसकी ओर दृष्टि करने का किसको साहस हो सकता था? दूसरा कारण यह था कि आरंभ में जो अभिनेता इस नाटक को करते और दिखाते थे वह इसके तत्त्वज्ञान और उसके अर्थ और उद्देश को नहीं समझते थे। इसलिए वे अपने अभिनय द्वारा लोगों पर वह प्रभाव नहीं डाल सके जो वास्तव में उसका उद्देश था। उसका परिणाम यह हुआ

कि पूरा तमाशा लोगों को नीरस और निरर्थक प्रतीत होता था और वह शीघ्र ही घबरा जाते थे। परंतु सूर्य का प्रकाश कदापि छिपा नहीं करता। कुछ दिनों बाद जब उसके ठीक विचार लोगों को हृदयंगम होने लगे और ऐक्टर भी ऐसे होने लगे जो वास्तविक इस कला में कुशल थे और जिनकी एक गति प्रकृति का दर्पण होती थी, तो "नातन" के गुण खुले, और उसे ऐसी लोकप्रियता, ऐसी सुविख्याति प्राप्त हुई कि उस समय से आज तक जरमनजाति उस पर मुग्ध है।

लेसिंग के लिखने का ढंग बहुत सीधा सादा है। "नातन" में तो उसने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह बिल्कुल ही सुबोध और सीधी सादी है। आद्योपांत अत्यंत सादी भाषा में अपने भाव प्रकट किये हैं। बड़े २ शब्द और दिखावा बिल्कुल नहीं है। यही कारण है कि इसने सब के हृदयों को समानभाव से मुग्ध कर लिया। मैंने यह चेष्टा की है कि लेसिंग के भाषा के गुण अनुवाद में प्रत्यक्ष रहें, यद्यपि उसका सा प्रभाव डालना मेरे वश का नहीं। इतना अवश्य है कि यदि वेष के बदल जाने से हृदय और मस्तिष्क नहीं बदलते तो भाषा के बदलने से प्रभाव क्यों बदले? लेसिंग के भाव प्रत्येक अवस्था में वर्तमान रहेंगे। जिस व्यक्ति के लेख ने एक बार सारे यूरोप का कायापलट कर दिया, उसका तेज और उसका प्रभाव ज्यों का त्यों बाक़ी है। यदि यूरोप में ऐसे हृदय थे जिन्होंने इसके गुणों को ग्रहण किया, तो मेरी जन्मभूमि में भी अंतर्दृष्टिसंपन्न लोगों का अभाव नहीं। वहाँ यदि अंधकारमय युग का प्रभाव था, तो यहाँ भी थोड़े दिनों से हृदयों पर एक आवरण पड़ गया है। सौभाग्य की बात

है कि यह संवरण पतली है। वहाँ यदि एक अकेले लेसिंग के तेज के प्रकाश से अंधकार दूर हो गया, और गोइते, शिलर (Schiller) और कांत (Kant) जैसे जरमनी के रत्नों के लिए रास्ता खुल गया, तो क्या मेरी जन्मभूमि के स्वनामधन्य ऋषियों और मुनियों के तेज के साथ लेसिंग का तेज मिलकर मेरे देश के सच्चे सुपूतों को उस उच्चस्थान तक न पहुँचा देगा जहाँ से बैठकर उन्होंने देख लिया था कि मानवप्रकृति में निकृष्टतम वस्तु हठ और धर्मद्रोहिता है? उसी उच्चस्थान पर तो बैठकर उन्होंने बचन दिया था कि वह भारतवर्ष को मनुष्यत्व के गुणों से शोभायमान करेंगे। घटाएँ छँट रही हैं, प्रकाश दिखाई दे रहा है, वह समय दूर नहीं है कि लेसिंग की जैसी संजीवनी शक्ति से प्रभावित होकर सूर्य अपने पूर्णप्रकाश के साथ चमकने लगे।

"नातन" के पात्र।

सुलतान सलाहुद्दीन अय्यूबी

शाहज़ादी सित्ता—सुलतान की बहन।

नातन—जेरूसलम का एक धनी यहूदी।

रीशा—नातन की लड़की जिसको उसने गोद लिया था।

दाया—एक ईसाई स्त्री जो नातन के घर में रहती है और रीशा की संरक्षक है।

एक युवक नाइट टेंपलर।

हाफी—एक मुसलमान दरवेश।

जेरूसलम का मठाध्यक्ष।

जेरूसलम के एक मठ का संन्यासी।

सुलतान सलाहुद्दीन का एक गवर्नर।

सुलतान के सेवक।

स्थान—जेरूसलम।

नातन

पहला अंक

पहला दृश्य

नातन के मकान का दीवानख़ाना। नातन अभी सफ़र से वापस आया है। दाया उससे मिलती है।

दाया—अहा! यह तो वह है! अरे! यह तो नातन है! (नातन से) परमात्मा की बड़ी कृपा हुई कि उसने आख़िर तुम्हें हम तक पहुँचा ही दिया!

नातन—हाँ दाया, सच है परमात्मा की बड़ी कृपा हुई। पर तुमने 'आख़िर' क्यों कहा? क्या तुम कहना चाहती हो कि मैं इससे पहले आना चाहता था या आ सकता था? यह समझो कि जिस रास्ते से मुझे दायें बायें फेर खाकर आना पड़ा है उस हिसाब से बाबल जेरू-सलम से पूरे २०० मील होगा। और क़र्ज़ का वसूल

करना कुछ खेल तो है नहीं कि कोई सौदागर जल्दी जल्दी यह काम कर ले; यह कोई हथेली पर सरसों जमाना थोड़े ही है ?

दाया—ओह, नातन ! तुम यहाँ होते तो तुमपर न जाने क्या बीतती ! तुम्हारे घर में—

नातन—आग लग गई—न ? यह तो मैं सुन चुका हूँ। परमात्मा की इच्छा ! यह अशुभ समाचार तो मैं पहले ही सुन चुका हूँ।

दाया—आह ! वह तो सारे का सारा जलकर राख हो जाता !

नातन—अच्छा, दाया। तो हम एक और नया घर बना लेते—इस से भी अच्छा बनाते। क्यों ?

दाया—हाँ, ठीक है। बड़ा अच्छा हुआ। कि हमारी रीशा बच गई—बाल बाल बच गई, नहीं तो राख का ढेर ही हो गई होती।

नातन—राख का ढेर ?—कौन ? मेरी रीशा ? हाय ! यह बात तो मैंने नहीं सुनी। ईश्वर न करे, यदि ऐसा होता तो भला मुझे घर ही लेकर क्या करना था ?—बाल बाल बच गई ! नहीं, दाया, देखो ! सच सच

बताओ। नहीं वह जरूर जल गई है। लो, अब कह भी डालो। चाहे मुझे मार ही डालो पर, ईश्वर के लिये, मुझे तड़पाओ मत। हाय! वह जरूर जलकर राख हो चुकी है।

दाया—और जो ऐसा होता भी तो क्या यह बात तुम बस मेरे ही मुंह से सुनते?

नातन—फिर तुम क्यों मुझे दुःख पर दुःख दे रही हो? हाय रीशा! मेरी रीशा!

दाया—तुम्हारी? खास तुम्हारी रीशा?

नातन—हाँ, हाँ! ईश्वर न करे ऐसा हो कि मैं उसे अपना बच्चा न कहूँ!

दाया—पर तुमने अपनी किसी और चीज को भी इसी जोर के साथ अपना कहा है?

नातन—हाँ, सच तो है। पर किसी और चीज पर मेरा इतना अधिकार भी तो नहीं है। जो कुछ भी मेरे पास है, वह या तो परमात्मा का दिया हुआ है या भाग्य से मिल गया है। मगर मुझे अपने पुण्यों के बदले में तो केवल एक वही रीशा पुरस्कार में मिली है।

दाया—नातन, तुम अपने अनुग्रहों का मुझसे कितना मूल्य दिलवा रहे हो! जो वे सब अनुग्रह इसी उद्देश

से थे, तो मालूम नहीं उन्हें अनुग्रह कहना भी उचित है या नहीं।

नातन—"इसी" उद्देश से ? वह क्या उद्देश है ?

दाया—मेरी अंतरात्मा—

नातन—दाया, पहले ज़रा तुम मुझसे यह तो सुन लो कि—

दाया—मैं कहती हूँ कि मेरी अंतरात्मा—

नातन—अच्छा। मुझसे ज़रा यह तो सुन लो कि मैं बाबुल से तुम्हारे लिए कैसी अच्छी चीज़ें लाया हूँ। देखो तो, कैसी कैसी अच्छी और अनोखी चीज़ें हैं। मैं सच कहता हूँ कि रीशा के लिए भी मैं ऐसी अच्छी चीज़ें नहीं लाया।

दाया—नातन, अब इससे क्या लाभ ? अब मेरी अंतरात्मा चुप नहीं रह सकती।

नातन—मैं तो यह देखने के लिये बेचैन हूँ कि तुम यह हँसली और छल्ला और बाली और माला पसंद करती हो या नहीं। यह सब चीज़ें मैंने रास्ते में दमश्क से तुम्हारे लिए खरीदी थीं।

दाया—हाँ, यह तो तुम्हारी आदत ही है कि मुझ निगोड़ी के ऊपर तुम उपहार पर उपहार लादते रहते हो।

नातन—मैं तुम्हें दिये जाता हूँ। तुम लिये जाओ। बोलो मत।

दाया—क्या? क्या कहा? बोलो मत?—नातन, भला तुम्हें कौन नहीं जानता कि तुम उदारता और धर्म की मूर्त्ति हो? फिर भी—

नातन—हो तो यहूदी।—तुम यही कहना चाहती थीं न?

दाया—मैं जो कहना चाहती हूँ वह तुम ख़ुद ही अच्छी तरह जानते हो—

नातन—अच्छा, बस। अब इस कहानी को छोड़ो।

दाया—अच्छा, तुम यहाँ जो कुछ करते हो वह परमात्मा की दृष्टि में अवश्य दंडनीय है। मैं न उसे बदल सकती हूँ न रोक सकती हूँ। परमात्मा इसका शाप तुम्हीं पर डाले!

नातन—मुझ ही पर शाप पड़े! अच्छा, यह तो बताओ वह है कहाँ? वह कहाँ गई? दाया, तुमने कहीं मुझे धोखा तो नहीं दिया? अच्छा, उसे ख़बर भी हो गई है कि मैं आ गया हूँ?

दाया—क्या पूछते हो? उसका तो अब तक डर के मारे जोड़ जोड़ काँप रहा है। उसके मस्तिष्क का यह

हाल है कि उसे हर चीज़ में आग ही आग दिखाई देती है। उसकी आत्मा नींद में जागती है, और जागते में सोती है। क्या कहूँ! कभी तो पशु से बुरी मालूम होती है और कभी देवताओं से बढ़कर।

नातन—हाय रे मेरी बच्ची! मनुष्य भी क्या वस्तु है!

दाया—आज सुबह वह बड़ी देर तक इस तरह आँखें मीचे पड़ी रही जैसे, ईश्वर न करे, कोई मुर्दा पड़ा हो। फिर एक दम से चौंक कर कहने लगी "वह देखो! पिताजी के काफ़ले के ऊँट चले आ रहे हैं। सुनो, पिता जी की प्यारी प्यारी आवाज़ धीरे धीरे सुनाई पड़ रही है।" इतने में फिर उसकी आँखें पथरा गईं, हाथ सिर के नीचे से निकल गया, और सिर धम से तकिये पर गिर पड़ा। उफ़! बस मैं जल्दी से दरवाज़े की तरफ़ लपकी, देखा तो सचमुच चले आ रहे हो। ईश्रव की लीला भी विचित्र है! इतनी देर तक उसकी जान बराबर तुम में और उसमें ही पड़ी रही।

नातन—उसमें—किसमें?

दाया—उसी में न, जिसने उसे आग में से निकाला था।

नातन—कौन ? कौन था वह ? वह कहाँ है जिसने मेरी रीशा की जान बचाई है ? वह है कहाँ, दाया ?

दाया—कोई नव-युवक टेंपलर था। कुछ दिन हुए वह यहाँ क़ैद होकर आया था। सलाहुद्दीन ने उसे तरस खाकर छोड़ दिया था।

नातन—क्या कहा ? टेंपलर ? और वह भी ऐसा कि सलाहुद्दीन ने उसको जीवन दान दिया था ? क्या रीशा के बचाने के लिए इतने बड़े अलौकिक कांड की आवश्यकता पड़ी ? हे भगवन् !

दाया—वह तो कहो वह बेचारा इस तरह दूसरा जीवन पाकर भी ऐसे साहस से जान दिये दे रहा था, नहीं तो रीशा मर ही चुकी थी।

नातन—दाया, बताओ तो वह है कहाँ ? वह तो कोई बड़ा वीर और सज्जन व्यक्ति मालूम होता है। वह है कौन ? बस, तुम मुझे उसके चरणों तक पहुँचा दो। तुमने उसे उसी समय वह सारा माल असबाब दे दिया होगा जो मैं यहाँ तुम्हारे पास छोड़ गया था ? सब कुछ दे दिया है न ? बल्कि यह कहो कि और भी बहुत कुछ देने की प्रतिज्ञा की है—क्यों ?

दाया—भला, हम यह कैसे कर सकते थे ?

नातन—तो तुमने ऐसा नहीं किया ?

दाया—लो, अब क्या मालूम वह कहाँ से आया था ? न जाने कहाँ गया, कहाँ न गया ? उसे भला हमारे घर की क्या ख़बर थी। वह तो केवल आवाज़ ही सुनकर एक दम से भागा हुआ आया और देखा—बस अपने चुग़े में लिपट लिपटा कर धुएँ और आग को चीरता फाड़ता वहीं पहुँचा जहाँ रीशा चीत्कार करके लोगों को पुकार रही थी। हम तो समझे थे कि इस भलेमानस का भी अन्त हो गया, पर वाह रे वीर! थोड़ी ही देर में वह आग की लपटों से निकला और हमारी प्यारी बच्ची को अपने शक्तिशाली बाँहों में उठाए हमारे सामने आ खड़ा हुआ। परमात्मा की लीला! बड़ा रूखा सूखा सा आदमी था। हम हर्ष से चिल्लाते और उसको धन्यवाद देते ही रहे पर उसने ज़रा भी तो परवा न की। बस, रीशा को लिटा—यह जा, वह जा, कहीं अन्तर्धान हो गया, और हम खड़े देखते के देखते ही रह गये।

नातन—परमात्मा की बड़ी कृपा हो, जो वह सदा के लिए न चला गया हो!

दाया—वह सामने हमारे नबी की क़ब्र के ऊपर कुछ खजूर के पेड़ छाया किये खड़े हैं न? अच्छा, तो पहले कुछ दिनों वह इन पेड़ों में आता जाता दिखाई देता था। मैं बेबस उसके पास जाती थी जैसे किसी ने मुझपर जादू कर दिया हो। उसकी बलाएं लेती थी, उसकी बहादुरी को सराहती थी और तरह तरह से अनुनय विनय करती कि, ईश्वर के लिये, अधिक नहीं तो एक ही बार ज़रा उस निरीह बच्ची का मुंह तो देख लो। जब तक वह तुम्हारे चरणों में गिर कर और आँसू बहा कर अपने हृदय की ज्वाला शान्त न कर लेगी उसे चैन न पड़ेगा।

नातन—हाँ, फिर?

दाया—फिर क्या? सारा परिश्रम व्यर्थ गया। उसने एक न सुनी, उल्टा मुझ ही को बनाने लगा कि—

नातन—कि तुम डर के भागीं। ऐं?

दाया—ऐं नहीं। भला ऐसा भी क्या था! मैं उससे प्रति दिन मिलती थी और नित्य नये ताने सुनती थी। भला मैंने उसकी कौन सी बात न सही, और ऐसी कौन बात थी जो मैं हँसी ख़ुशी न सहती! पर अब तो वह उन खजूर के पेड़ों की ओर भी घूमने नहीं आता।

किसी को मालूम नहीं कि वह कहाँ जा छिपा है।—यह तुम चौंके क्यों ? तुम तो जैसे कुछ सोचने लगे। ऐं ?

नातन—कुछ नहीं। मैं यह सोच रहा हूँ कि इस घटना ने रीशा जैसी बच्ची के दिल पर क्या कुछ प्रभाव न डाला होगा—कि एक व्यक्ति जिसका वह आदर करने को बाध्य है, उससे ऐसी उदासीनता का व्यवहार है। उधर यह उदासीनता और इधर हृदय उस ओर खिंचा जाता है। परमेश्वर ही जाने, उसके हृदय और मस्तिष्क में क्या उद्वेग हो रहा होगा, और कुछ भी समझ में न आता होगा कि कौन सा भाव विजय लाभ करता है—क्रोध और घृणा, अथवा दुःख और करुणा ! बहुधा ऐसा होता है कि दोनों में से कोई भी विजय प्राप्त नहीं कर पाता और कल्पना इस युद्ध में योगदान करके मनुष्य को एक स्वप्न की सी अवस्था में कर देती है। कभी उसका हृदय मस्तिष्क का रूप धारण करता है और कभी मस्तिष्क हृदय का—उफ़ ! क्या मुसीबत है ! यदि मैंने अपनी रीशा के स्वभाव को ग़लत नहीं समझा है तो निःसन्देह उसकी भी यही अवस्था होगी। वह भी कुछ ऐसे ही स्वप्न की सी अवस्था में होगी।

दाया—ऐ ! वह तो बड़ी भोली भाली और प्यारी लड़की है।

नातन—अच्छा, कैसी ही हो। अब तो वह दिल के हाथों पागल है।

दाया—अब तुम उसे जो चाहो कहो। उसके दिल में तो यह बात बैठ गई है कि वह टेंपलर न मनुष्य था, न इस पृथ्वी का रहने वाला, बल्कि कोई फ़रिश्ता था। यह तो तुम जानते ही हो कि बचपन ही से उसके नन्हे से दिल में यह बात जमी हुई है कि एक फ़रिश्ता सब समय उसकी चौक-सी करता है। वह समझती है कि यह फ़रिश्ता बादलों में छिपा हुआ आग में उसके आस पास मंडरा रहा था, और एक दम से टेंपलर बन कर उसके सामने आ खड़ा हुआ।—मुसकुराओ मत। क्या मालूम ऐसा ही हो।—अच्छा, तुम चाहे हँस लो, पर उसे तो इस आनंदमयी कल्पना का स्वाद लेने दो। आख़िर यह कुछ बुरी बात तो है नहीं। ईसाई, मुसलमान, यहूदी सब ही ऐसा समझते हैं।

नातन—हाँ, मुझे भी यह कल्पना बहुत प्यारी है। अच्छा, दाया, ख़ुश रहो। तुम ज़रा जाकर देखो तो सही,

वह क्या कर रही है। मैं उससे बातें करना चाहता हूँ। फिर मैं उसके दीवाने, मन मौजी रक्षक फ़रिश्ते को कहीं न कहीं से ढूंढ़ निका-लूंगा। यदि वह अब तक इस पृथ्वी पर है और अपनी मर्यादा का ख़याल न करके 'नाइट' बना फिरता है, तो तुम निश्चय जानो मैं उसे अवश्य ढूंढ ही के छोडूंगा, और यहाँ ले आऊँगा।

दाया—तुम बहुत बड़े काम का बीड़ा उठा रहे हो।

नातन—फिर तो इस आनंदमयी कल्पना की सत्ता दिखाई देगी, जो इससे भी ज्यादा आनंदमयी होगी। और दाया, निश्चय जानो कि मनुष्य के हृदय को मनुष्य फ़रिश्ते से भी ज्यादा भाता है। हाँ, तो यदि इस तरह तुम यह देख लो कि वह फ़रिश्ते की मतवाली अच्छी हो गई है तब तो तुम मुझे दोष नहीं दोगी, मुझ से क्रोध तो नहीं करोगी?

दाया—तुम बड़े अच्छे आदमी हो, पर नटखट भी वैसे ही हो। अच्छा मैं जाती हूँ। मगर वह देखो तो—वह ख़ुद ही आ रही है।

[रीशा आती है]

दूसरा दृश्य ।

रीशा और वही पहले दृश्य के पात्र ।

रीशा—अहा! पिताजी! यह तो सचमुच तुम ही हो! मैं तो समझी थी तुमने केवल अपने शब्द ही को अपने आने का संवाद देने के लिए आगे आगे भेज दिया है। अब तुम कहाँ हो? क्या अब भी पहाड़ियों, जंगलों, और नदियों ने हमें और तुम्हें अलग कर रखा है? पिताजी, अब तो हम तुम सब एक ही घर में बैठे हुए हैं। फिर भी तुम जल्दी से अपनी बेटी को गले नहीं लगाते। तुम्हारी मुन्नी सी रीशा तो जलने से बाल बाल बची। बस, जलनेवाली ही थी। नहीं, नहीं, पिताजी! डरो मत, जलने वाली थी, जली तो नहीं। हाय! कैसी बुरी मृत्यु है, आग में जलना! आह!

नातन—बेटी, मेरी प्यारी बेटी!

रीशा—तुम तो फ़ुरात, दजला, उरदन, और न जाने कौन कौन सी नदियाँ पार करके आये होगे। ऐ है! अभी

जो मैं जल कर मरती मरती बची हूँ, उससे पहले मेरे हृदय में तुम्हारे सम्बन्ध में नाना प्रकार के भाव उठते थे। मैं काँप काँप उठती थी। पिताजी, परन्तु सच कहती हूँ, जल कर मरने से पानी में डूब कर मरना मुझे अच्छा लगने लगा है। उसमें ठंडक सी तो होगी। मनुष्य प्रसन्नचित हल्का फुल्का सा लगता होगा। क्यों? फिर भी—देखो, न तुम डूबे, न मैं जली। अब हम आनंद से रहेंगे, और परमात्मा की आराधना किया करेंगे। मैं तो यही कहूँगी कि परमात्मा ने अदृश्य फ़रिश्तों ही को भेजा होगा जिन्होंने तुम्हें और तुम्हारे उस जहाज़ को अपने परों पर लेकर पार उतार दिया। उसी परमात्मा ने मेरे फ़रिश्ते को आज्ञा दी होगी कि मनुष्य के रूप में आकर, सुफ़ैद सुफ़ैद बगले के से परों पर उठा कर मुझे आनंद से आग से बाहर निकाल लाये—

नातन—[दिल में] सुफैद २ बगले के से पर!—हाँ, ठीक तो है। इसका मतलब असल में टेंपलर के सुफैद कपड़ों से है।

रीशा—वह सब के सामने अपने परों पर उठाकर मुझे जलती आग से निकाल लाया। पिता जी, मैंने फ़रिश्ते

को अपनी आँख से देखा है—और वह वही मेरा रक्षक फ़रिश्ता है।

नातन—हाँ, इसमें क्या संदेह। रीशा ऐसी ही है कि फ़रिश्ता उसकी सेवा में आये, और जैसे रीशा ने उसे पसंद किया है वैसे ही उसे भी रीशा पसंद आई होगी।

रीशा—[कुछ मुसकुराते हुए] पिताजी, पिताजी ! यह तुम किसके गुण बता रहे हो ? फ़रिश्ते के या अपने ?

नातन—बेटी, तुम चाहे कुछ कहो, सच तो यह है कि यदि वह ऐसे ही कोई साधारण मनुष्य होता जैसे हम प्रतिदिन देखा करते हैं, तब भी वह तुम्हारी ऐसी ही सेवा करता, और तुम्हें वह फ़रिश्ता ही दिखाई पड़ता—और सचमुच उसे फ़रिश्ता कहना भी चाहिए।

रीशा—साधारण मनुष्य नहीं, पिताजी—फ़रिश्ता। सचमुच का फ़रिश्ता था, पिताजी।—और तुमने आप ही तो मुझे यह सिखाया है कि फ़रिश्ते भी हुआ करते हैं, और जो लोग हमारे परमपिता के भक्त हैं उनके निमित्त वह फ़रिश्तों से बड़े बड़े अनोखे काम लेता है। मैं भी तो आख़िर उसी परमपिता से प्रेम करती हूँ।

नातन—हाँ, और परमात्मा भी तुमसे प्रेम करता है। वह सब समय तुम्हारे और तुम जैसे बच्चों के लिए नाना प्रकार के अलौकिक कांड दिखाया करता है और अनंत काल ही से दिखाता आ रहा है।

रीशा—यह बातें मुझे बहुत अच्छी लगती हैं।

नातन—अच्छा, समझ लो तुम्हें किसी टेंपलर ही ने बचाया। फिर चाहे यह बात कैसी ही साधारण हो और प्रतिदिन होती भी हो, परन्तु हम तो तुमसे यह पूछते हैं कि एक टेंपलर का तुम्हें इस प्रकार आकर बचा लेना भी क्या कुछ कम अलौकिक कांड है। मैं तो कहता हूँ कि सब से बड़ा अलौकिक कांड यही है। सच तो यह है कि हम प्रतिदिन बहुत से असली और सच्चे अलौकिक कांड देखते २ उन्हें साधारण बात समझने लगते हैं। यदि यह प्रतिदिन के अलौकिक कांड न होते, तो अलौकिक कांड का नाम किसी बुद्धिमान के मुंह से न निकलता, वरन् केवल बच्चों के मुँह से सुनाई देता जो असाधारण और अनोखी चीज़ों को मुँह फैलाये तका करते हैं।

दाया—[नातन से] ज़रा सोचो तो सही। तो क्या अब तुम्हारी यह इच्छा है कि तुम ऐसी एंच-पेंच की

यह कैसे हुआ कि एक टेंपलर उस रात योंही फिरता फिराता आ गया और मेरी जान बचा गया ?

नातन—भाई! क्या बात मस्तिष्क से उतारी है! लो, अब बोलो। दाया, अब क्या कहती हो? तुमने ही तो मुझे बताया था कि वह यहाँ गिरफ़ार होकर आया था। मुझे विश्वास है कि तुम्हें उसका कुछ और हाल भी मालूम है।

दाया—हाँ, लोग कहते तो ऐसा ही हैं। वरन् यह भी कहते हैं कि सुलतान ने बस एक इसी टेंपलर की जान-बख़शी थी, और वह भी इस लिए कि सुलतान का कोई बड़ा प्यारा भाई था और इस टेंपलर का रूप उससे बहुत मिलता था। इतनी बात तो अवश्य है कि सुलतान के उस भाई को मरे हुए कोई २० वर्ष हो चुके हैं। न तो हमें उसके नाम की ख़बर है, न यह मालूम कि वह किस मैदान में मरा। इस लिए मुझे इस सारे क़िस्से पर विश्वास नहीं होता। सब मनगढ़ंत सी कहानी मालूम होती है।

नातन—क्यों, दाया, इसके विश्वास न करने की क्या बात है? आख़िर तुम और लोगों की तरह इस सीधी-

सादी सी बात को झूठ ठहराकर कोई ऐसी बात समझ लेने से रहीं जिसका और भी विश्वास न हो।—सलाहुद्दीन को अपने कुटुम्बियों से बहुत प्रेम है। तो फिर यह कौन से आश्चर्य की बात है कि उसे अपनी युवावस्था में अपने किसी भाई से विशेष प्रेम रहा हो? संसार में क्या दो आदमियों की सूरतें नहीं मिला करतीं? क्या बहुत समय बीत जाने से मनुष्य किसी को भूल भी जाता है? और यह कब से होने लगा कि किसी कारण का कोई परिणाम ही उत्पन्न न हो? आखिर, इसमें किस बात का तुम्हें विश्वास नहीं होता? दाया, तुम तो बड़ी बुद्धिमती हो, तुम्हारे लिए तो इसमें कोई भी अनोखी बात नहीं हो सकती। और तुमने जो अलौकिक बात बताई है, इसमें बस इतनी सी कमी है कि उसे बुद्धि नहीं मानती।

दाया—तुम तो फिर हँसी करने लगे!

नातन—हाँ, इस लिए कि तुम भी तो मुझको हँसी में उड़ा रही हो।—अच्छा, भाई, जो कुछ हो पर रीशा! तुम्हारा बच निकलना पहेली ही है। यह परमात्मा का काम है जो बादशाहों के बड़े से बड़े जोड़-तोड़ और उनके दृढ़ से दृढ़ संकल्पों को एक कच्चे सूत से अपने वश में

किये हुए है। यह परमेश्वर की हँसी—नहीं, उसकी शक्ति की लीला है।

रीशा—अच्छा, पिताजी, मेरा ही भ्रम सही। पर तुम्हें ख़ूब मालूम है कि मैं जानबूझ कर भ्रम में नहीं पड़ती।

नातन—हाँ, मुझे खूब मालूम है। वरन् तुम तो सदा यही चाहती हो कि ठीक बात मालूम हो। देखो, कुछ मिहराब की तरह ललाट, एक विशेष काट की नाक, पतली लकीर सी भँवें, और उनके नीचे उभरी हुई ज़रा चपटी सी हड्डी, एक लकीर, एक झुकाव, एक खत्त, एक ज़रा सा गढ़ा, एक तिल—एक ओर तो यूरोप के एक जंगली के चेहरे में इन सब बातों का जमा होना, और दूसरी ओर एशिया में तुम्हारा आग से इस तरह बचना! जो लोग आश्चर्यजनक बातों की खोज में हैं, मैं उनसे यह पूछता हूँ कि यही बात क्या कम आश्चर्य की है? फिर इसकी क्या आवश्यकता है कि बिना कारण किसी फ़रिश्ते ही को खींच कर इसमें लाया जाये।

दाया—अच्छा, नातन, जो तुम मुझे बोलने दो तो मैं यह पूछूँ कि जो कुछ तुम कहते हो वही सच सही। पर

यही सच समझ लेने में कौन सा दोष है कि उसे फ़रिश्ते ही ने बचाया है, किसी साधारण मनुष्य ने नहीं बचाया ?—वरन् ऐसा समझने में यह भलाई है कि हमें यह मालूम होने लगता है कि हम अपने उस संरक्षक के अधिक निकट हो गये हैं जिसकी थाह को पहुँचना कठिन है।

नातन—यह गर्व है, केवल गर्व, और कुछ नहीं। यह तो ऐसा ही है कि जैसे लोहे की हंडिया चाँदी की बनना चाहे तो वह यह कहे कि मुझे चूल्हे पर से चाँदी के चिम्टे से उठाओ। तुम पूछती हो इसमें क्या दोष है, और मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि ऐसा समझने में भलाई क्या है ? तुम्हारा यह समझना कि तुम ऐसा समझ कर परमेश्वर से और ज्यादा निकट हो जाओगी, या तो ना समझी है या असम्मान !—और सच पूछो तो इससे हानि ही होती है। अच्छा, जो कुछ मैं कहता हूँ उसे कान दे कर सुनो और सच्ची सच्ची बात कहो।—जिस व्यक्ति ने उसके प्राण बचाये हैं, अब चाहे वह कोई हो, मेरा विचार है कि तुम और तुमसे अधिक रीशा यह चाहती होगी कि इस व्यक्ति की कुछ सेवा की जाये। यदि वह फ़रिश्ता ही है, तो यह बताओ कि उसकी

क्या सेवा कर सकती हो ?—कदाचित् उसको धन्यवाद दोगी, या उससे सामने ठंडी २ साँसें लोगी, और प्रार्थना करोगी ? या उसका ख्याल ही कर करके बड़ी श्रद्धा के साथ अपने आपको घुला डालोगी; नहीं तो उसके त्योहार के दिन उपवास करोगी और उसके नाम से दान-पुण्य करोगी।—इस सब का फल व्यर्थ ! मेरा तो विचार यह है कि तुम्हारे पुण्यकार्य से स्वयं तुम्हारा और तुम्हारे पड़ोसियों का जितना उपकार होता है उतना उसका कदापि नहीं होता। तुम्हारा फ़रिश्ता न तो तुम्हारे उपवास से मोटा होता है, न तुम्हारे दान-पुण्यों से धनवान्; न तुम्हारी श्रद्धा के आग्रह और उद्गार से उसका कुछ मान बढ़ता है, और न तुम्हारे विश्वास से वह अधिक दृढ़ होता है।—क्यों ? है या नहीं ? और यदि वह मनुष्य है, तो कैसा आकाशपाताल का अन्तर हो जाता है।

दाया—हाँ ! मैं मानती हूँ, यदि वह मानवजाति का होता तो हमें धन्यवाद प्रदान करने का अधिक अवसर मिलता। परमात्मा साक्षी है कि हमारा हृदय कितना व्याकुल हुआ है कि हम भी उसके साथ कुछ प्रेम व्यवहार करते। पर उसने तो हमसे कुछ चाहा ही नहीं, और

न उसे कुछ आवश्यकता थी। वह तो ऐसा था मानो उसे संसार की किसी वस्तु से संबंध ही नहीं, और उसकी इच्छाएँ बिल्कुल पूर्ण हो चुकी हों। वह तो फ़रिश्तों की तरह किसी वस्तु की परवा ही नहीं करता। बस, अपने ही में मग्न है। और फ़रिश्ते ऐसे ही हो भी सकते हैं!

रीशा—और जब वह अन्त में हमारी दृष्टि से लुप्त हो गया, तो—

नातन—लुप्त हो गया? आखिर कैसे?—खजूरों के नीचे?—फिर नहीं दिखाई दिया? यह बात क्या है?—मालूम होता है तुम लोगों ने उसे कहीं और भी ढूँढा है—

दाया—नहीं, हमने तो नहीं ढूँढ़ा।

नातन—नहीं ढूँढा! दाया, ऐसा भी हो सकता है? अब ज़रा अपने उन बुरे स्वप्नों की वीभत्सता देखो। तुम लोग भा बड़ी पागल हो। तुम्हें भी क्या २ आनन्द के स्वप्न दिखाई दिया करते हैं! और जो तुम्हारा फ़रिश्ता बीमार पड़ा कुढ़ रहा हो, तो?

रीशा—बीमार!

दाया—नहीं, यह नहीं हो सकता। कदापि नहीं।

रीशा—मेरा तो जैसे सारा शरीर काँप रहा है। दाया, मैं तो सुन्न हुई जा रही हूँ। मेरा माथा तो देखो। अभी अभी गर्म था। इतनी सी देर में ठंढा बर्फ़ हो गया।

नातन—वह कोई फ़िरंगी है। हमरे गर्म देश में रहने का उसे अभ्यास नहीं है। अभी उमर भी कम है। कष्ट उठाना नहीं जानता, और अपने धर्म के उपवास व्रत और रात्रिकाल की उपासनाओं का भी उसे अभ्यास नहीं है।

रीशा—बीमार है! बीमार!

दाया—नहीं, बेटा। नातन का अर्थ यह है कि ऐसा भी होना संभव है।

नातन—हाँ, हाँ। वह पड़ा हुआ है। न उसके पास कोई मित्र है और न इतना रुपया है कि कोई आदमी ही नौकर रख सके।

रीशा—पिता जी, अब क्या होगा ?

नातन—वह बेचारा योंही पड़ा है। न कोई देखने भालने वाला है, न सहानुभूति करनेवाला और न सहायक। वह विपत्ति और मृत्यु का शिकार है।

रीशा—कहाँ, कहाँ ? कौन ?

नातन—वही जो एक ऐसी लड़की के लिए आग में कूद पड़ा था, जिसे उसने कभी देखा भी न था—

दाया—नातन, बस, अब बेचारी लड़की पर दया करो।

नातन—जो परमेश्वर की सृष्टि उस जीव से जिसे उसने बचाया था बात भी नहीं करता, उसकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखता—केवल इसलिए कि कहीं उसे धन्यवाद ग्रहण न करना पड़े—

दाया—नातन, बस अब इस बेचारी पर दया करो।

नातन—न उसे फिर कभी देखना चाहता है, सिवा इसके कि उसे फिर किसी और आपदा से बचाये। अब तुम ही कहो कि वह सिवा मनुष्य के और कौन हो सकता है ?

दाया—जरा सुनो तो सही। जरा देखो तो—

नातन—और अब अपनी मृत्यु के समय, सिवा इसके कि उसे अपने पुण्यकार्य का ज्ञान है, और कोई चीज उसे आराम देनेवाली नहीं है।

दाया—बस, जाने दो। तुम तो इस बेचारी को मारे डालते हो !

नातन—और तुम उस बेचारे को मारे डालती थीं। कदाचित् मार भी डाला हो। रीशा, रीशा, सुनो, मैंने तुम्हें यह औषधि दी है, विष नहीं दिया। विश्वास करो वह जीता है। ज़रा सम्हलो। सम्भवतः वह बीमार नहीं है, बिल्कुल नहीं।

रीशा—पिता जी, तुम्हें विश्वास है कि वह मरा नहीं ? बीमार भी नहीं ? ऐं ?

नातन—हाँ, निश्चय जानो नहीं मरा। परमेश्वर इस पृथ्वी में मनुष्यों को उनके पुण्यकार्यों का प्रतिफल देदिया करता है।—अच्छा, बेटा, अब तुम जाओ। परन्तु सुनो, मैं तुम्हें एक बात बताता हूँ। और वह यह है कि श्रद्धा के उद्वेग में आजाना बहुत सहज है पर पुण्यकार्य करना बहुत कठिन है। आलसी और दुर्बल मनुष्यों का स्वभाव है, चाहे उन्हें इसका अनुभव न हो, कि वे श्रद्धा के उद्वेग से झूमने लगते हैं, और इस बहाने पुण्यकार्य करने के कष्ट से बच जाते हैं।

रीशा—पिताजी, अब मुझे कभी अकेला मत छोड़ना। —तो क्या तुम्हारा विचार है वह कहीं और चला गया ?

नातन—हाँ, और नहीं तो क्या ? अच्छा, अब तुम जाओ—जाओ।—पर हाँ, वह मुसलमान कौन है जो इस तरह आश्चर्य से मेरे लदे फंदे ऊटों को देख रहा है ? तुम इसे जानती हो ?

दाया—[रीशा चली जाती है] ऐं ! भूल गये ? यह वही तुम्हारा दरवेश है।

नातन—वह कौन ?

दाया—ऐं ! तुम्हारा वही दरवेश जो तुम्हारे साथ शतरंज खेला करता था। हाँ, वही तो है।

नातन—हाफ़ी ?—यह तो वह नहीं है।

दाया—हाँ, बात यह है न, कि वह अब सुलतान का ख़ज़ांची हो गया है।

नातन—हाफ़ी ?—अब फिर तुम अपने वही स्वप्न देखने लगीं।—हाँ, हाँ यह तो सचमुच वही है—लो, वह तो इधर आ रहा है। जाओ, शीघ्र भीतर चली जाओ। देखें, क्या संवाद लाया है।

तीसरा दृश्य

नातन और दरवेश

दरवेश—हाँ, ज़रा खूब अच्छी तरह आँख फाड़कर देखो।

नातन—अरे मियाँ, यह तुमही हो या कोई और है?—दरवेश और यह ठाठ!

दरवेश—फिर क्यों न हों? क्या दरवेशों से पृथ्वी का और कोई काम लिया ही नहीं जा सकता?

नातन—हाँ, कदाचित्।—मगर, भाई, मेरा तो यही विचार है कि सच्चे दरवेश को कभी यह ख्याल न आता होगा कि उससे और कुछ भी काम लिया जायेगा।

दरवेश—परमेश्वर के प्रेरित पुरुष की दुहाई! संभव है मैं असली दरवेश न हूँ पर जब कोई बाध्य हो जाये तो—

नातन—बाध्य हो जाये! दरवेश?—दरवेश, और बाध्य हो जाय! कोई बाध्य ही क्यों हो? और फिर विशेषतया एक दरवेश? अच्छा, तो वह किस बात के लिए बाध्य हो जाये?

दरवेश—इस बात के लिए कि उससे किसी कामको कहा जाये—बल्कि खुशामद की जाये—और वह यह भी समझता हो कि काम अच्छा है, तो वह दरवेश ऐसा काम करने के लिए बाध्य है।

नातन—हाँ, यह तो तुम सच कहते हो—आओ मियाँ, आओ। ज़रा तुम्हें हृदय से लगा लूँ—तुम अब भी मेरे मित्र हो?

दरवेश—मियाँ, पहले यह क्यों नहीं पूछ लेते कि अब मैं क्या हो गया हूँ?

नातन—उँह! चाहे तुम कुछ ही हो गये हो!

दरवेश—अच्छा, यदि मैं राज्य का छोटा सा चाकर हो गया हूँ, और इस कारण तुम मेरी मित्रता को पसंद न करो तो?

नातन—यदि तुम्हारा दिल अबभी दरवेश है तब तो मुझे कोई चिन्ता नहीं, किसी तरह निवाह ही लूंगा। रहा तुम्हारा पद—मेरी निगाह में तो उसका मान उतना ही है जितना तुम्हारे इस कपड़े का—बस।

दरवेश—और जो तुम्हें उस पद का मान करना पड़े—तब? भला, बूझो तो वह क्या पद है? क्यों? क्या सोचने

लगे ?—अच्छा, यह बताओ कि यदि तुम राजा होते तो मैं तुम्हारे दरबार में क्या होता ?

नातन—दरवेश होते और क्या होते, या ज्यादा से ज्यादा तुम मेरे—रसोइया होते ।

दरवेश—ठीक है, कि आपके पास रह कर सीखा सिखाया भी भुला देता ।—क्या बात कही है—रसोइया ! आपने खानसामाँ ही क्यों न कह दिया ?—मैं सच कहता हूँ आपसे ज्यादा तो सलाहुद्दीन मेरा सम्मान करता है । मैं उसका खजांची हो गया हूँ ।

नातन—तुम ?—सुलतान के यहाँ हो ?

दरवेश—मेरा मतलब यह है कि मैं उसके अपने ख़ज़ाने का दारोग़ा हूँ । सरकारी ख़ज़ाना अब भी उसके बाप के हाथ में है—मैं केवल उसके घर का ख़ज़ानची हूँ ।

नातन—उसका घर भी तो बहुत बड़ा है ।

दरवेश—बल्कि जितना तुम समझते हो उससे भी बड़ा । वह हर साधु-संत को अपने घराने में समझता है ।

नातन—परन्तु सलाहुद्दीन को तो इन अभागों से इतनी घृणा है—

दरवेश—कि उसने क़सम खाली है कि उनको सिरे से मिटा ही कर छोड़ूंगा, चाहे ऐसा करने में मियाँ साहब स्वयं भी फ़क़ीर हो जायें।

नातन—हाँ, यही मैं भी कहने को था।

दरवेश—बल्कि यों कहो—कि वह अभी से कंगाल हो गया है। प्रत्येक दिन संध्या तक उसका खज़ाना खाली, बल्कि खाली से भी बदतर हो जाता है। प्रातःकाल जो एक ज्वारभाठा सा आता है वह दोपहर तक उतर उतरा कर खतम भी हो जाता है।

नातन—क्योंकि उसके एक हिस्से को नहरें चूस जाती हैं जिनको रोकना और बंद करना बिल्कुल असंभव है।

दरवेश—ठीक!

नातन—मैं सब जानता हूँ।

दरवेश—प्रथमतः तो यही बुरा है कि बादशाह गिद्धों की तरह मुर्दों पर जा पड़ें। पर यह इससे भी दसगुना ज्यादा बुरा है कि वह स्वयं ही गिद्धों के सामने मुर्दे बन जायें।

नातन—नहीं, दरवेश! अब ऐसा भी न कहो।

दरवेश—साहिब, यों कह देना तो बहुत आसान है। चलिए, यदि मैं अपने पद से अलग हो जाऊँ, और आपको अपनी जगह करा दूं, तो बताइए आप मुझे क्या देंगे ?

नातन—अच्छा, तुम्हें आमदनी क्या होती है ?

दरवेश—मुझे ? कुछ ज्यादा नहीं। परन्तु तुम तो इससे मोटे हो जाओगे, कारण जब उसका संदूक खाली हो जाये और ऐसा बहुधा होता है तो तुम मजे में अपनी थैलियों का मुँह खोल देना। खूब धड़ाधड़ क़र्ज़ देना और सूद दर सूद में जितना चाहना पेट भर कर अदा कर लेना।

नातन—सूद दर सूद के लाभ पर भी ब्याज ? क्यों ?

दरवेश—हाँ, और क्या ?

नातन—और इस तरह होते होते मेरी सारी पूंजी सूद दर सूद का एक बड़ा भारी ढेर हो जायेगी।

दरवेश—ललचाते तो ज़रूर होगे, दोस्त ! और यदि सचमुच तुम नहीं चाहते तो अभी दोस्ती के खतम हो जाने की दस्तावेज़ लिख दो। नातन, मुझे तुमपर बड़ा भरोसा था।

नातन—यह क्या ? दरवेश तुम्हारा मतलब क्या है ?

दरवेश—मतलब यह है कि मैं समझे बैठा था कि बस अब मेरा खाता तुम्हारे यहाँ खुल जायेगा और इस प्रकार मुझे अपने कर्त्तव्य के पालन करने में पूरी सहायता मिलेगी। पर तुम सिर हिलाते हो ?

नातन—देखो, भई ! अब कुछ भ्रम न रखना, और इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि—कि नातन के पास जो कुछ है उसे दरवेश हाफ़ी सब समय अपने काम में ला सकता है। पर हाँ ! वह हाफ़ी वह—सलाहुद्दीन का सेवक जो—जो—

दरवेश—हाँ, हाँ, यह तो अच्छी तरह समझता हूँ और जानता हूँ कि तुम जितने बुद्धिमान हो उतने ही पुण्यवान् भी हो। तुमने जिनको हाफ़ियों का भेद बताया है वह बहुत जल्द एक दूसरे से अलग हो जायेंगे। देखो, मेरे पद की यह वर्दी मुझे सलाहुद्दीन ने दी है। याद रखो कि अभी इसका रंग उतरने भी न पायेगा और यह फटने भी न पायेगी—और दरवेश का पहनावा ऐसा ही होना भी चाहिए—कि यह जेरूसलम में किसी खूँटीपर टंगी होगी, और मैं हलके फुलके कपड़े पहने नंगे पाँव अपने गुरुजनों के साथ यहाँ से दूर

हिंदुस्तान में गङ्गा जी की जलती हुई रेती में फिरता दिखाई दूँगा। समझे ?

नातन—तुम से ऐसी ही आशा है।

दरवेश—बल्कि उनके साथ शतरंज भी खेलूँगा।

नातन—इससे बढ़कर तुम्हें और क्या संपत्ति चाहिए ?

दरवेश—अच्छा, अब यह सोचो कि इस पद को स्वीकार करने में मुझे लोभ क्या था। तुम समझते होगे कि मैंने धन के लिए ऐसा किया, कि फिर मुझे किसी से भीख न मांगनी पड़े और दूसरे निर्धनियों में धनी बनकर रहने लगूँ, और मुझमें इतनी शक्ति हो जाये कि किसी धनी साधु को एक दम से निर्धन-धनी बना दूँ।

नातन—नहीं, मैं यह तो नहीं समझता था कि तुम्हारी यह इच्छा होगी।

दरवेश—हाँ, बात कुछ और ही है, और इससे भी ज़्यादा अनुचित है। सच्ची बात यह है कि आज तक मैं किसी की खुशामद के दम में नहीं आया, पर अब जो सलाहुद्दीन एक पागलपने में पड़ गया तो उसकी इस पुण्य प्रवृत्ति ने मुझे फुला दिया।

नातन—वह क्या ?

दरवेश—सलाहुद्दीन ने कहा कि "एक फ़कीर ही अच्छी तरह बता सकता है कि फ़क़ीर बेचारे किस आफ़त में पड़े रहते हैं। और उसे यह भी अनुभव रहता है कि फ़क़ीरों को किस तरह जी खोल कर दान दिया जाये। तुझसे पहले जो व्यक्ति मेरे यहाँ ख़ज़ानची था वह बड़ा ही रूखा, फीका, सूखा और निर्दय सा व्यक्ति था। जब कभी रुपये देता भी था तो बहुत ही कठिनाई से। प्रत्येक मनुष्य का हाल खोद २ कर पूछता था। किसी की आवश्यकता जानकर के भी उसको संतोष नहीं होता, वरन् आवश्यकता का कारण भी पूछता था कि उसके अनुसार संभल कर और नाप तौल कर दे। पर—हाफ़ी ऐसा नहीं कर सकता, और उसके कारण सलाहुद्दीन ऐसा कठोर हृदय और कंजूस भी नहीं मालूम होगा। वह कुछ पानी का रुका हुआ नल थोड़े ही है कि अंदर साफ़ साफ़ पानी जाता है पर निकलता है तो गंदा होकर और रुक रुक कर। हाफ़ी मेरी ही तरह सोचता है, और उसमें मेरा ही सा अनुभव भी है।"—तो समझे भी? यों चिड़ीमार ने बाँसुरी बजाते २ अंत में चिड़िया को फाँस ही लिया। मैं भी कैसा मूर्ख हूँ। एक मूर्ख के हाथों मूर्ख बन गया।

नातन—ठहरो, ठहरो। यह क्या बक रहे हो ?

दरवेश—और क्या जी ! लो, अब यह परले दर्जे की मूर्खता नहीं तो और क्या है कि मनुष्य हज़ारों पर अत्याचार करे, उन्हें बरबाद करके रख दे, लूट खाये, उनका सत्यानाश कर दे, बिना कारण उन्हें सताये—और यह सब केवल इसलिए कि कुछ लोग उसे बड़ा दानी समझें ! तुम ही कहो कि यह मूर्खता है और व्यर्थ है या नहीं, कि मनुष्य जबरदस्ती परमात्मा के अनुग्रह और दया की नक़ल करे ? उसकी अनुग्रह तो अच्छे बुरे सब के लिए समान है। उसकी धूप की किरणों और मेह के छींटे बस्ती और मरुभूमि दोनों ही जगह समान रूप से पड़ती हैं। यह तो मनुष्य तब करे कि जब उसका ख़ज़ाना भी परमात्मा के खज़ाने की तरह भरपूर हो। यह मूर्खता नहीं तो और क्या है कि—

नातन—अच्छा बस अब रहने दो। ख़तम करो।

दरवेश—नहीं, ज़रा मुझे अपनी मूर्खता तो बता लेने दो। यह मूर्खता नहीं तो और क्या है कि मैं ऐसी २ मूर्खताओं में भलाई ढूंढता फिरूं, और फिर भलाइयों के लिए इन मूर्खताओं में स्वयं ही योगदान करूं। क्यों ? अब इसका क्या जवाब है ?

नातन—हाफ़ी ! देखो मैं बताऊँ। तुमसे जितनी जल्द हो सके अपनी मरुभूमि का रास्ता लो। मुझे डर है कि तुम मनुष्यों में रहते २ कहीं मनुष्यत्व से भी न जाते रहो।

दरवेश—हाँ, भई। तुम ठीक कहते हो। मुझे भी यही डर था। अच्छा, तो अब अनुमति हो।

नातन—भला, अब ऐसी भी क्या जल्दी है ? हाफ़ी ! ठहरो तो सही। अरे मियाँ ! मरुभूमि भागी जाती है क्या ? [अपने आप से] वह सुन भी रहा है कि नहीं—अरे मियाँ, होत् !—वह तो चला भी गया। उफ़्फ़ोह ! कैसी चूक हुई है ! मैंने उससे अपने उस टेंपलर का हाल भी न पूछा—उसे अवश्य उसका हाल मालूम होगा।

चौथा दृश्य।

दाया जल्दी २ घबराई हुई नातन के पास आती है।

दाया—नातन! नातन!

नातन—हाँ, क्या है? क्या चाहती हो?

दाया—ऐ! वह फिर दिखाई दिया है! वह फिर वहाँ आया है!

नातन—कौन, दाया? कौन?

दाया—वह! वह!

नातन—वह—वह—वह तो बहुत से मारे फिरते हैं। आखिर कुछ मालूम भी हो कौन? पर हाँ! मैं समझा—तुम्हारा "वह" तो एक ही है।— यह नहीं हो सकता। चाहे वह फ़रिश्ता ही हो, ऐसा नहीं हो सकता।

दाया—वह फिर खजूरों के नीचे आकर टहल रहा है, और कभी २ खजूरें भी तोड़ता है।

नातन—और खाता भी है?—टेंपलर हो कर भी ऐसा करता है!

दाया—तुम मुझे अकारण क्यों सताते हो ? लड़की की उत्सुक आँखों ने उसे पहले ही खजूरों के उस झुंड में भाँप लिया है, और वह जहाँ जाता है उसी को ताकती रहती है। वह तुमसे बड़ी खुशामद से क़स्में दिलाकर कहती है कि तुम अभी अभी उसके पास चले जाओ। ज़रा जल्दी करो। वह कटहरे में से तुम्हें इशारे से बता देगी कि वह अब भी वहीं फिर रहा है या उधर खेतों की तरफ़ निकल गया है। नातन, जल्दी करो, ज़रा जल्दी !

नातन—अभी तो मैं ऊँट पर से उतरा ही हूँ। क्या यों ही चला जाऊँ ? यह भी कोई ढंग है ? तुम स्वयं ही क्यों न चली जाओ, और उससे कह दो कि मैं लौट आया हूँ। निश्चय जानो वह गबरू मेरे घर से इसी लिए बचा २ फिरता है कि मैं घर का मालिक यहाँ नहीं था। और अब जो रीशा का बाप उसे इस तरह बुला रहा है वह ख़ुशी ख़ुशी आ जायेगा। —जाओ, जाकर उससे कह दो कि मैं बुला रहा हूँ और दिल से चाहता हूँ कि वह आ जाये।

दाया—इससे कुछ लाभ नहीं होगा। वह तुम्हारे पास

कभी जो आये ।—साफ़ ही क्यों न कहूँ कि वह किसी यहूदी के यहाँ नहीं जाता । बस !

नातन—फिर भी तुम जाओ तो सही ! और कुछ नहीं तो उसे ज़रा वहाँ ठहरा ही लो । और जो यह भी न हो सके तो कम से कम उसे अपनी आँखों के सामने रक्खो ।—जाओ, मैं भी तुम्हारे पीछे ही पीछे आता हूँ ।

[नातन मकान के अंदर जाता है और दाया बाहर जाती है ।]

पाँचवाँ दृश्य।

एक विस्तीर्ण जगह जिसमें खजूरों के पेड़ छाया किये हुये हैं। एक टेंपलर खजूरों में इधर उधर टहल रहा है। मठ का एक बेचारा संन्यासी उसके पीछे पीछे कुछ दूर पर चला आता है और ऐसा मालूम होता है कि टेंपलर से कुछ कहना चाहता है।

टेंपलर—[दिल में] स्पष्ट है कि यह आदमी केवल समय काटने के लिए मेरे पीछे नहीं फिर रहा है—यह मेरे हाथों को किस तरह कनखियों से देख रहा है! [संन्यासी से] भाई साहब! . . . या कदाचित् यों कहना चाहिए कि बाबा साहब—ऐं?

संन्यासी—नहीं, साहब! केवल संन्यासी, वरन् केवल एक ग़रीब संन्यासी। आज्ञा कीजिए।

टेंपलर—हाँ, तो संन्यासी जी! भला मेरे पास क्या धरा है? परमात्मा जाने मेरे पास कुछ भी नहीं है।

संन्यासी—अच्छा, मैं फिर भी आपको आंतरिक धन्यवाद देता हूँ। आप जो कुछ देते हों परमात्मा आप

को उससे हज़ार गुना ज्यादा दे। दानी के लिए दिल चाहिए, फिर दान से क्या ? और मुझे आपके पास भिक्षा माँगने के लिए भेजा भी नहीं गया है।

टेंपलर—तो क्या आपको भेजा गया है ?

संन्यासी—जी हाँ, मठ से।

टेंपलर—जहाँ से मुझे अभी आशा थी कि यात्रियों का थोड़ा सा अन्न मिल जायगा।

संन्यासी—बात यह है कि रसोइया पहले ही से घिर गया था। पर आप अब मेरे साथ वापस चलिए।

टेंपलर—वह क्यों ? यह तो ठीक है कि मुझे मांस खाये हुए एक युग हो गया है, पर अच्छा, इसमें हानि क्या ? अब तो खजूरें भी पक गई हैं।

संन्यासी—महाशय, आप इस फल की ओर से यदि उदासीन ही रहें तो अच्छा है। ज्यादा खाया जाये तो इससे उलटी हानि ही होती है। यह प्लीहा को बढ़ाता है और बुरा खून पैदा करता है।

टेंपलर—मान लीजिए मुझे पागलपन ही पसंद हो तो फिर ? परन्तु महाशय, यह तो स्पष्ट है कि आपको मेरे पास

इस बात की ताकीद करने के उद्देश से नहीं भेजा गया है।

संन्यासी—जी नहीं, पर मुझे आपका पता लगाने और हाल चाल जानने के लिए भेजा गया है।

टेंपलर—और आप मुझ ही से ऐसा कह भी रहे हैं। खूब!

सन्यासी—क्यों न कहूँ ?

टेंपलर—[दिल में] यह भी कोई बड़ा ही चतुर संन्यासी मालूम होता है। [सन्यासी से] तो क्या आपके मठ में आप जैसे और महाशय भी हैं ?

सन्यासी—मुझे नहीं मालूम। पर महाशय, आखिर मुझे आज्ञा पालन तो करना ही है।

टेंपलर—तो क्या आप निःशंक आज्ञा पालन करते हैं ?

सन्यासी—महाशय, यदि शंका ही करूँ तो फिर आज्ञापालन करना ही क्या हुआ ?

टेंपलर—[दिल में] देखा न ? अन्त में सादगी ही की जीत रहती है।—[संन्यासी से] देखिए, आप मेरा विश्वास कीजिए और यह बता दीजिए कि वह कौन महा-

शय हैं जो इस तरह मेरे हाल की छान बीन कर रहे हैं ? और यह तो मैं शपथ करके कह सकता हूँ कि आप स्वयं वह व्यक्ति नहीं है ।

संन्यासी—भला ऐसा करना मेरे लिए उचित है ? या मुझे इससे कुछ लाभ हो सकता है ?

टेंपलर—फिर वह है कौन जिसके लिए ऐसा करना भी उचित है और उसे इससे लाभ भी है ? आखिर उसे मेरे बारे में इतना कुतूहल क्यों है ? वह ऐसा कौन मनुष्य है ?

संन्यासी—मेरे जानते तो ऐसा व्यक्ति धर्माध्यक्ष है । उसीने मुझे आपके पीछे भेजा है ।

टेंपलर—धर्माध्यक्ष जी ! क्या उन्हें यह भी मालूम नहीं है कि इस सफ़ेद पहनावे पर इस लाल क्रूश का क्या अर्थ है ?

संन्यासी—जी हाँ ! यह तो मैं भी जानता हूँ ।

टेंपलर—अच्छा, संन्यासी जी, यों ही है तो लीजिए सुनिए । मैं एक टेंपलर हूँ और क़ैदी हूँ । वरन् यह भी बताये देता हूँ कि मैं तबनीन में गिरफ़ार हुआ था, अर्थात् उस क़िले में जिसे हम अस्थायी सन्धि के बिल्कुल अन्त

समय में विजय करने के इच्छुक थे और उसके बाद सूर पर धावा करनेवाले थे। अच्छा, इतना और भी कहे देता हूँ कि मैं बीसवाँ क़ैदी था और सुलतान सलाहुद्दीन ने केवल मेरे ही प्राण बचाये थे। अब तो आपका धर्माध्यक्ष जो कुछ जानना चाहता है जान गया न? बल्कि यों कहिए कि उसकी इच्छा से भी ज़्यादा मालूम हो गया।

संन्यासी—पर यह तो उससे ज़्यादा नहीं जितना वह पहले से जानता है। और अब वह यह जानना चाहता है कि इसका क्या कारण है कि सलाहुद्दीन ने केवल आप ही के प्राण बचाये। उसे किसी और पर क्यों दया न आई?

टेंपलार—मैं ख़ुद ही नहीं जानता, बताऊँ क्या? हुआ यह कि मैं अपनी गर्दन नंगी करके अपने चोग़े पर घुटनों के बल बैठा हुआ तलवार के वार की प्रतीक्षा कर ही रहा था कि सलाहुद्दीन ने मुझे ध्यान से देखना आरंभ किया, फिर एकबार ही उछल कर मेरे पास आकर खड़ा हो गया और कुछ इशारा किया। मुझे उठा लिया गया और मेरी बेड़ियाँ तोड़ दी गईं। मैंने धन्यवाद देना चाहा, देखता क्या हूँ कि उसकी आँखों में आँसू डबडबा रहे हैं और वह भी मेरी तरह गुम-सुम खड़ा है। वह चला गया, और मैं

जीवित रह गया। अब इस पहेली का जो कुछ भी मतलब हो उसे धर्माध्यक्ष स्वयं ही सुलझा सकता है।

संन्यासी—वह इससे यह नतीजा निकालता है कि परमात्मा ने आपको किसी बड़े और आवश्यक कार्य के लिए बचा लिया है।

टेंपलर—जी हाँ, बड़े आवश्यक कार्य के लिए ! एक यहूदी की लड़की को आग में से निकालने के लिए यात्रियों के क़ाफ़ले को तूरे सैना पर पहुँचाने के लिए, और इसी प्रकार और कामों के लिए—और क्या ?

संन्यासी—अभी तो वह बड़े बड़े काम होनेवाले हैं, महाशय ! और उस समय तक यह भी कुछ बुरा नहीं है जो आप कर चुके हैं। संभवतः धर्माध्यक्ष ने स्वयं आपके लिए भारी काम ठीक कर रखा है।

टेंपलर—संन्यासी जी, क्या सचमुच आपका यह विचार है ? मालूम होता है कि वह इस बारे में कुछ कह चुका है—क्यों ?

संन्यासी—जी हाँ ! परन्तु पहले मुझे आपकी परीक्षा करनी है कि आप उस काम के आदमी हैं भी कि नहीं।

टेंपलर—बहुत अच्छा ! तो लगे हाथ परीक्षा कर ही

डालिए। [दिल में] मैं भी तो देखूँ यह कैसे परीक्षा करता है।—जी हाँ!

संन्यासी—बहुत सहज उपाय यह है कि मैं धर्माध्यक्ष की इच्छा आप पर प्रकट कर दूँ।

टेंपलर—जी!

संन्यासी—बात यह है कि वह आप के हाथ कोई पत्र भेजना चाहता है।

टेंपलर—मेरे हाथ? मैं कोई प्यादा तो हूँ नहीं। बस, यही मतलब था? यही वह भारी कार्य था जो एक यहूदी की लड़की को आग में से निकाल लाने से भी अधिक गौरवान्वित था?

संन्यासी—और क्या ऐसा ही होगा। धर्माध्यक्ष जी कहते हैं कि यह पत्र तमाम ख्रीष्ट धर्मावलंबी लोगों के लिए अत्यंत महत्व का है। वह कहते हैं कि जो आदमी इसे यत्न के साथ ले जायेगा परमात्मा उसे बैकुंठ में एक अत्यंत सुंदर मुकुट पहनायेगा। अच्छा, और वह यह भी कहते हैं कि आपसे अधिक और कोई व्यक्ति इस योग्य नहीं है।

टेंपलर—मुझसे?

संन्यासी—धर्माध्यक्ष जी कहते हैं कि इस मुकुट को

प्राप्त करने की योग्यता आपसे अधिक और किसी व्यक्ति में नहीं है।

टेंपलर—मुझसे ?

संन्यासी—आप स्वाधीन हैं, और सब से बड़ी बात यह है कि आप हर जगह फिर सकते हैं। आप समझ सकते हैं कि शहरों पर किस तरह धावा किया जाये और किस तरह उन्हें बचाया जाये। अच्छा, फिर धर्माध्यक्ष यह कहते हैं कि सलाहुद्दीन ने यह भीतर वाली अर्थात् दूसरी दीवार जो अभी बनाई है उसकी मज़बूती या कम-ज़ोरी का हिसाब या उसका हाल आपसे अच्छा कोई मनुष्य नहीं बता सकता। और यह आवश्यक है कि जो वीर परमात्मा ही के निमित्त प्राण देने को आये हैं उनको यह बात मालूम हो जायें।

टेंपलर—प्यारे भाई! क्या मैं आपसे यह भी पूछ सका हूँ कि इस पत्र में और क्या क्या लिखा है ?

संन्यासी—बात यह है कि यह तो मुझे भी अच्छी तरह मालूम नहीं। इतना अवश्य जानता हूँ कि यह पत्र बादशाह फ़िलिप के हाथों तक पहुँचने के लिए है। मालूम होता है कि धर्माध्यक्ष को—मुझे बहुधा आश्चर्य हुआ

करता है कि यह क्या बात है कि एक ऐसे धर्मात्मा को, जिसका जीवन परमात्मा और बैकुन्ठ ही के लिए हो, इस पृथ्वी की बातें, जो उसकी मर्यादा से बहुत नीची हैं, ऐसी अच्छी तरह ज्ञात हो—

टेंपलर—हाँ, तो धर्माध्यक्ष को ?—

संन्यासी—ठीक ठीक मालूम है, और अच्छी तरह मालूम है कि यदि फिर युद्ध छिड़ जाये तो सलाहुद्दीन किस प्रकार, कहाँ, कितने आदमियों के साथ और किस ओर से युद्ध आरम्भ करेगा।

टेंलपर—तो उसे यह मालूम है !

संन्यासी—जी हाँ। और वह यह चाहता है कि बादशाह फिलिप को भी इसका ज्ञान हो जाये कि स्थिति क्या है कि वह संकट का निर्णय करके यह निश्चय कर सके कि जिस प्रकार बने सलाहुद्दीन से फिर एक बार अल्पकालिक संधि की जाये जिसे आपकी समाज ने ऐसी बहादुरी से तोड़ डाला था।

टेंपलर—आपके यह धर्माध्यक्ष जी भी खूब चीज़ हैं ! हाँ ! यह बात है। यह महाशय मुझे साधारण प्यादा ही नहीं वरन्—जासूस—बनाना चाहते हैं। अच्छा, तो

महाशय जी! आप अपने धर्माध्यक्ष जी से यह कह दीजिए कि जहाँ तक आप मेरी परीक्षा कर सके हैं आपने यह निश्चय किया है कि मैं इस काम के योग्य नहीं हूँ। मैं अब भी अपने आपको क़ैदी समझता हूँ और एक टॅपलर का कर्त्तव्य यही है कि वह बहादुरी के साथ लड़े। उसका यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह जासूसी करता फिरे।

संन्यासी—मैं भी यही समझता था। और मुझे आपके जवाब से कोई शिकायत भी नहीं। हाँ, अभी और सुनिए। असल बात तो रह ही गई। धर्माध्यक्ष ने किसी प्रकार एक क़िले की टोह लगा ली है और यह मालूम कर लिया है कि क़िले का नाम क्या है और वह लबनान में किस जगह पर है। इसमें वह ख़ज़ाना है जिसके बल पर सलाहुद्दीन का दूरदर्शी पिता अपनी सेनाओं का प्रबन्ध करता है और अपने तमाम युद्धों का ख़र्च चलाता है। मालूम ऐसा होता है कि सलाहुद्दीन कभी कभी कुछ आदमियों को साथ लेकर गुप्त रास्तों से इस पहाड़ी क़िले को जाया करता है। आप मेरा मतलब समझ गये न?

टॅपलर—बिलकुल नहीं।

संन्यासी—ज़रा सोचिए तो कि सलाहुद्दीन पर आक्रमण करके उसका काम तमाम कर देने के लिए इससे अच्छा अवसर कभी हाथ आ सकता है?—ऐं! आप डरते क्यों हैं? आपको मालूम भी है कि थोड़े से धर्म-भीरु मारूनी इस काम के लिए तय्यार बैठे हैं? अब आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस महत् कार्य को पूरा करने के लिए कोई बहादुर आदमी उनका सरदार हो।

टेंपलर—और आपके धर्माध्यक्ष जी ने इस बहादुर आदमी की जगह के लिए मुझे ही चुना है?

संन्यासी—उनका विचार यह है कि फ़िलिप इस काम में सहायता देने के लिए यदि तोलेमी से आक्रमण करे तो बहुत अच्छा होगा।

टेंपलर—और, संन्यासी जी, आप मुझ ही से यह कह रहे हैं?—मुझसे? और आपने क्या मुझसे यह नहीं सुना—अभी तो सुना है—कि मैं सलाहुद्दीन का कितना ज्यादा कृतज्ञ हूँ?

संन्यासी—जी हाँ, यह तो मैंने सुना है।

टेंपलर—और फिर भी आप ऐसा कहते हैं?

संन्यासी—जी हाँ। धर्माध्यक्ष का विचार यह है कि यह बहुत अच्छी बात है। परन्तु परमात्मा और आप की समाज—

टेंपलर—अच्छा, इन दोनों के नाम से तो कोई अंतर नहीं पड़ता—न यह परमात्मा की आज्ञा है और न मेरी समाज का मनशा है कि मैं दुराचारियों का काम करूँ।

संन्यासी—नहीं, कभी नहीं। धर्माध्यक्ष जी का विचार यह है कि—जिस काम को मनुष्य बुरा समझता है वह परमात्मा की दृष्टि में बुरा नहीं होता।

टेंपलर—सलाहुद्दीन ने तो मुझे दुबारा जीवन प्रदान किया, और मैं उसी के प्राण लेने पर उतारू हो जाऊँ ?

संन्यासी—धिक्, धिक्! परन्तु धर्माध्यक्ष जी का कहना यह है कि—कि सलाहुद्दीन कुछ भी हो खीष्टधर्म का शत्रु है, और यह संभव ही नहीं कि उसे कभी यह अधिकार प्राप्त हो कि वह आपकी मित्रता का दम भरे।

टेंपलर—अच्छा, मित्र न सही, पर इतना तो हो कि मैं उसके लिए अंत में विद्रोही और अत्यन्त नीच विद्रोही तो न प्रमाणित होऊं।

संन्यासी—बिलकुल ठीक। मैं स्वीकार करता हूँ। परन्तु—फिर भी धर्माध्यक्ष जी समझते हैं कि—यदि कोई विशेष कार्य जिसके लिए कोई मनुष्य किसी मनुष्य का कृतज्ञ हो, स्वयं उस मनुष्य के निमित्त न किया गया हो तो वह परमात्मा और मनुष्य दोनों की कृतज्ञता के अनुपयुक्त है। और धर्माध्यक्ष जी कहते हैं कि जब हमें मालूम है कि सलाहुद्दीन ने केवल इस कारण आपके प्राण बचाये थे कि आपके चेहरे-मुहरे में कोई ऐसी विशेष बात थी कि उससे उसे अपना भूला हुआ भाई याद आ गया, तो . . .

टेंपलर—हाँ! तो धर्माध्यक्ष जी को यह भी मालूम है! अच्छा, फिर? क्या अच्छा होता यदि ऐसा ही होता! आह! सलाहुद्दीन! यदि प्रकृति ने मेरे चेहरे में कोई ऐसी बात रख दी है जो तुम्हारे भाई के चेहरे से मिलती जुलती है तो क्या मेरे गुणों में भी कोई ऐसी बात न होनी चाहिए जो उसके गुणों से मिलती जुलती हो? और यदि कोई ऐसी बात हो तो क्या मैं केवल एक धर्माध्यक्ष की इच्छा पूरी करने के लिए उसे दबा सकता हूँ? हा प्रकृति! न तू ऐसी झूठी है, और न परमात्मा के कामों में कहीं ऐसा दोष है। संन्यासी जी, आप

जाइए। बस, अब मेरे क्रोध को ज्यादा न भड़काइए। जाइए, जाइए।

संन्यासी—जी हाँ; मैं जाता हूँ, और जितना आनन्द आया था उससे ज्यादा आनंदित होकर जाता हूँ। मुझे क्षमा कीजिएगा। परन्तु आप जानते हैं कि हम बेचारे मठ के रहनेवालों को अपने धर्माध्यक्ष की आज्ञा माननी ही पड़ती है।

छठा दृश्य

टेंपलर और दाया ।

टेंपलर थोड़ी देर से दाया को कुछ दूरी से देख रहा था और अब दाया उसकी ओर देखती है ।

दाया—[दिल में] मैं समझती हूँ कि इस संन्यासी ने उसे प्रसन्न कदापि नहीं छोड़ा है। अच्छा, फिर भी मुझे साहस से अपना काम कर ही आना चाहिए ।

टेंपलर—[दिल में] वाह ! खूब ! वह कहावत सच है कि संन्यासी और स्त्री, और स्त्री और संन्यासी शैतान के पंजे हैं। आज वह मुझे दोनों पंजों में फाँस रहा है ।

दाया—[दिल में] हा परमात्मन् ! यह मैं क्या देख रही हूँ ? [पुकार कर] ऐ धर्म्म के सिपाही ! यह आप ही हैं क्या ? परमात्मा की कृपा है—हज़ार २ कृपा है ! पर यह तो बताइए, आप अब तक छिपे कहाँ रहे ? कहीं बीमार तो नहीं हो गये थे ?

टेंपलर—नहीं तो ।

दाया—तो आप कुशल से तो हैं ?

टेंपलर—हाँ ।

दाया—महाशय ! हम लोगों को आपकी बड़ी चिंता लग रही थी।

टेंपलर—सचमुच ?

दाया—आप अवश्य कहीं बाहर गये हुए थे, न ?

टेंपलर—हाँ, ठीक है।

दाया—और अभी आज ही आये हैं न ?

टेंपलर—कल आया हूँ।

दाया—रीशा के पिता भी आज ही आये हैं। और कदाचित् अब रीशा को आशा हो सकती है...

टेंपलर—किस बात की ?

दाया—उस बात की जिसके लिए उसने मुझसे कई बार कहा है कि आपसे पूछूं। उसके पिता ने भी बड़े अनुनय से कहा है कि—आप अवश्य हमारे यहाँ आयें। वह अभी बाबुल से चले आ रहे हैं, और अपने साथ बीस ऊँटों पर जवाहिरात, मोती, और कपड़े और मसाला और परमात्मा ही जाने क्या २ भारी २ माल लाये हैं। वैसी वस्तुएँ तो फिर आप जानिए ईरान और शाम और चीन ही में मिलें तो मिलें, और कहीं थोड़े ही मिलती हैं।

टेंपलर—मुझे तो कुछ भी नहीं खरीदना है।

दाया—उसके भाईबंद उसका ऐसा संमान करते हैं जैसे राजकुमारों का। मुझे आश्चर्य इस बात का है कि वह लोग उसे बुद्धिमान नातन कहते हैं, धनवान् नातन क्यों नहीं कहते।

टेंपलर—कदाचित् वह यह समझते हों कि धनवान और बुद्धिमान् दोनों एक ही बात है।

दाया—यह तो सब एक तरफ़ रहा, उन्हें तो यह उचित था कि उसे पुण्यवान् नातन कहते। महाशय, आप क्या जानें वह कैसे अच्छे आदमी हैं। जैसे ही उन्हें खबर हुई कि आपने हमारी रीशा पर इतना बड़ा उपकार किया है, जो आप उस समय वहाँ होते तो, परमात्मा ही जाने, वह इसके धन्यवाद स्वरूप आपके साथ कैसा कुछ व्यवहार करते और क्या कुछ दे डालते।

टेंपलर—हाँ।

दाया—आप चाहे परीक्षा करके देखिये, आइए, वहीं चल कर न देख लीजिए।

टेंपलर—परन्तु ऐसे मुहूर्त्त कैसी जल्दी बीत जाते हैं। न?

दाया—आप स्वयं ही समझ सकते हैं, जो वह ऐसे दयालु और ऐसे अच्छे स्वभाव के न होते तो भला मैं इतने दिन उनके यहाँ टिकनेवाली थी ? आप समझते होंगे मुझे इतनी भी ख़बर नहीं कि ख्रीष्टधर्मावलम्बी मनुष्य की कितनी मर्यादा होती है। मैंने अपने झूले में कभी ऐसी लोरियाँ नहीं सुनी थीं कि मैं अपने स्वामी के साथ यहाँ पैलस्टाइन को केवल इस लिए आऊँ कि एक यहूदी की लड़की की सेवा करूँ। मेरे स्वामी बड़े ही सज्जन पुरुष थे और उन दिनों क़ैसर फ्रेडरिक के मुसाहिब थे—

टैंपलर—और वह स्विज़रलैंड के रहनेवाले थे और क़ैसर के साथ एक छोटी सी नदी में डूब मरने को अपने लिए सम्मान समझते थे और गौरव भी। यही न ?—अरे! ये बातें तो पहले भी तुम मुझे कई बार सुना चुकी हो। अब आख़िर कब तक सुना २ कर मेरा सिर खाया करोगी ?

दाया—सिर खाया करूँगी ! हा स्वर्गीय पिता !

टैंपलर—हाँ, और नहीं तो क्या ? नाक में दम ही तो कर रक्खा है। अब तो मैंने ठान ली है कि न तुमसे कभी मिलूंगा। और न तुम्हारी बक-बक सुनूंगा। और मुझे यह भी पसन्द नहीं कि मैं बार बार अपने उसी एक

काम का उल्लेख सुने जाऊँ जिसके करने की मैंने कभी इच्छा भी नहीं की थी। उसका ख्याल ही अब मेरे लिए बिल्कुल एक पहेली सा है। यह तो मैं नहीं कहता कि मैं वह काम करके पछता रहा हूँ। परन्तु देखो, जो अबके फिर कभी ऐसे ही काम की आवश्यकता हुई और मैं ऐसी फुर्ती से उसे न कर सका, और मैंने खूब सोच लेने के बाद भी जलनेवाले को जलकर राख हो जाने दिया, तो याद रक्खो कि उसका सारा पाप तुम्हारी ही गर्दन पर होगा।

दाया—ईश्वर ऐसा न करे!

टेंपलर—अच्छा, तो अब तुम मुझपर इतनी कृपा करो कि आज से मुझे भुला दो और याद न किया करो। और इस लड़की के पिता से भी मुझे बचाये रक्खो। यहूदी आखिर फिर यहूदी है, और मैं ठहरा अक्खड़ स्वाबी। अच्छा, अब रही स्वयं वह लड़की। सो, पहले तो उसका ध्यान मेरे दिल में रहा ही नहीं और जो कभी था भी तो बहुत दिन हुए कि मिट गया।

दाया—तुम्हारा ध्यान तो अब तक उसके दिल से नहीं निकला।

टेंपलर—नहीं, भला मेरे ध्यान का वहाँ क्या काम है ?

दाया—क्या खबर है ! लोग सदा वैसे ही थोड़े ही होते हैं जैसे वह बाहर से दिखाई पड़ते हैं।

टेंपलर—उससे अच्छे तो कदाचित् ही होते होंगे।

[चल देता है]

दाया—जरा ठहरिए तो सही। ऐसी भी क्या जल्दी पड़ी है।

टेंपलर—अरी भलीमानस ! तू क्यों मुझे इन खजूरों से घृणा दिलाये देती है ? मुझे इनमें घूमना बहुत ही अच्छा लगता है।

दाया—अच्छा, जाओ, मियाँ जरमन रीछ जाओ। [दिल में] फिर भी मुझे इस पशु का पता रखना चाहिये।

[दाया कुछ दूर से उसका पीछा करती है।]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

सुलतान का महल

सलाहुद्दीन और सित्ता शतरंज खेल रहे हैं।

सित्ता—सलाहुद्दीन, यह आपको क्या हो गया है? आज आप कैसे खेल रहे हैं?

सलाहुद्दीन—क्यों, क्या अच्छा नहीं खेल रहा हूँ? मैं कुछ सोच रहा था।

सित्ता—मेरे लिए तो अच्छा ही है। परन्तु नहीं, यह चाल भी कुछ ठीक नहीं। यह चाल वापस लीजिये।

सलाहुद्दीन—वह क्यों?

सित्ता—आपका यह घोड़ा पिट जायेगा।

सलाहुद्दीन—हाँ, सच तो है। अच्छा, लो यों ही सही।

सित्ता—अब तो मैं अपना प्यादा आगे बढ़ाती हूँ।

सलाहुद्दीन—ठीक, यह तो शह पड़ गई।

सित्ता—भला इस चाल से आपको क्या लाभ होगा ? लीजिए, फिर मैं आगे बढ़ती हूँ। और—यह देखिए ! अब आपकी फिर वही पहली सी हालत है।

सलाहुद्दीन—सच यह है कि इस गोरखधंधे से कुछ खोये बिना बचना ही कठिन है। तुम मेरे घोड़े को पीट दो, बस और क्या करोगी ?

सित्ता—मैं नहीं पीटती। छोड़े देती हूँ।

सलाहुद्दीन—तुमने मुझे कुछ बचा थोड़े ही दिया है। बात यह है कि तुम्हारे लिए यह चाल घोड़े के पीटने से ज्यादा जरूरी है।

सित्ता—हाँ, शायद।

सलाहुद्दीन—हाँ, तो यह एकतरफ़ा फैसला तो मत करो। यह देखो, लो ! चाहे बद लो, तुम्हें मेरी इस चाल का सान-गुमान भी न था। क्यों ?

सित्ता—हाँ, तो मैं यह कैसे समझ लेती कि आप अपने फ़रज़ीन से तंग आ गये हैं और पिटवा देना चाहते हैं ?

सलाहुद्दीन—फ़रज़ीन को ?

सित्ता—अच्छा, अब तो मामला साफ़ है। आज मैं अपने १००० दीनार तो जीत ही लूँगी।

सलाहुद्दीन—वह कैसे ?

सित्ता—आप यह क्यों पूछते हैं ? आप तो ख़ुद ही ज़ोर लगा लगा कर और जान-बूझकर हारते हैं और फिर भी मैं नुकसान में रहती हूँ। एक तो ऐसे खेल में कुछ आनन्द नहीं आता, दूसरे यदि मैं हार भी जाऊँ तब भी मुझे बहुत कुछ मिल रहता है। मेरे अभ्यास की कमी के कारण आप जो मेरी सांत्वना करना चाहते हैं तो मुझे बदे हुए से भी दुगना दे डालते हैं।

सलाहुद्दीन—मेरी छोटी बहिन, मालूम हुआ तुम जब हारती हो तो जान बूझकर हारती हो। क्यों, है न ?

सित्ता—हाँ, भाई जान! कदाचित् आपकी उदारता ही इसका कारण है कि मुझे अब तक अच्छी तरह खेलना न आया।

सलाहुद्दीन—इन बातों में खेल तो हमारा यों ही रह गया। लाओ, इसे शेष ही कर डालें।

सित्ता—अच्छा, यह बात है, तो लीजिए यह शाह हुई, और यह एक और शाह !

सलाहुद्दीन—अरे मुझे तो इस दोहरी दोहरी शह का ख्याल भी नहीं था। अब तो मुझे डर है कि मेरा फ़रज़ीन भी गया, बल्कि मात भी हुई ही समझो।

सित्ता—देखें, अब आप कैसे बचकर भागते हैं।

सलाहुद्दीन—नहीं, नहीं। तुम मेरे फ़रज़ीन को अवश्य पीट दो। मुझे इस मुहरे से कभी लाभ हुआ ही नहीं।

सित्ता—क्या यही मुहरा ऐसा है ?

सलाहुद्दीन—ले लो, पीट लो। इसमें कोई हरज नहीं। अब मेरे सब मुहरे बचे हैं।

सित्ता—मेरे भाई ने मुझे खूब अच्छी तरह सिखा दिया है कि बेगमों से अच्छी तरह सुलूक करना चाहिए।

[यह कहकर फ़रज़ीन को यों ही छोड़ देती है]

सलाहुद्दीन—अब चाहे तुम फ़रज़ीन को छोड़ दो, चाहे ले लो, अब वह मेरा तो है नहीं।

सित्ता—परन्तु आवश्यकता ही क्या है ? शह !—शह !

सलाहुद्दीन—चली चलो।

सि॰—शह !—और शह !—और फिर शह !

सलाहुद्दीन—और मात !

सित्ता—नहीं, पूरी मात तो नहीं है। भाई, अब भी अपने घोड़े को आगे बढ़ा दीजिए, और देखिए क्या होता है—परन्तु नहीं, अब आप जो जी चाहे कीजिए। बात वही है।

सलाहुद्दीन—बहुत ठीक !—तुम जीत गईं। हाफ़ी को चाहिए कि तुम्हारा रुपया अदा कर दे। उसे जल्दी बुलाओ। सित्ता, तुमने ग़लत नहीं कहा। मैं दिल लगा कर नहीं खेल रहा था। किसी और सोच में था। आख़िर ये लोग हमें यह साफ़ बेनिशान से मुहरे क्यों दे देते हैं ? न इनमें किसी चीज़ का चित्र है और न इनसे किसी चीज़ का ध्यान ही बंधता है। शायद वे लोग यह समझ रहे होंगे कि मैं किसी इमाम के साथ खेलने के लिए मंगा रहा हूँ। —पर यह भी कोई बात है ? यह भी मैंने हार जाने के लिए एक बहाना निकाला है। भला, मेरे हारने में इन बेचारे बे-सूरत मुहरों का कोई दोष है ? तुम्हारी कलाप्रवीणता, सुदूरदृष्टि और मनोयोग ने आज तुम्हें जिताया है।

सित्ता—आप ऐसी २ बातें करके अपने पराजय होने के दुःख को भुलाना चाहते हैं। यही समझ लेना काफ़ी

है कि आप किसी सोच में थे और मुझसे ज्यादा बेदिली से खेल रहे थे।

सलाहुद्दीन—तुम से ज्यादा? तो भई! तुम क्यों बेदिली से खेल रही थीं? तुम्हें क्या सोच था?

सित्ता—अच्छा, मेरे सोच का कारण आपका सोच न था। परन्तु भाई, अब हम फिर कब वैसे ही दिल लगा कर खेलेंगे जैसे सदा खेला करते थे?

सलाहुद्दीन—अब आगे से हम पहिले से अधिक ध्यान से खेला करेंगे। क्या तुम्हारा विचार है कि युद्ध जल्द ही छिड़ जायगा? जितनी जल्दी हो अच्छा है। चाहे अभी हो जाय। युद्ध मेरा छेड़ा हुआ थोड़े ही है। और मैं तो अब भी अल्पकालिक संधि को बढ़ाने को तैयार हूँ, बल्कि यह भी चाहता हूँ कि वह आदमी भी मेरे हाथ लग जाये जो मेरी बहिन सित्ता का सहधर्मी होने के उपयुक्त है—मेरा मतलब रिचर्ड के भाई से है—वही, रिचर्ड का भाई।

सित्ता—बस, आपको तो सब समय अपने रिचर्ड की प्रशंसा करने की ही पड़ी रहती है।

सलाहुद्दीन—उसकी बहिन यदि हमारे सुलतान की दुलहिन बन जाती तो कैसा अच्छा घर बनता। और यह

वंश समस्त पृथ्वी का श्रेष्ठतम और उच्चतम वंश बन जाता ! सुनती हो, बहिन ? मैं अपने घरवालों की प्रशंसा करने में कुंठित नहीं हूँ। मैं अपने मित्रों के उपयुक्त हूँ। अहा ! ऐसे वंश से कैसे २ वीर पैदा होते।

सित्ता—मैं सदा आपके इस आनन्दमय स्वप्न की हँसी उड़ाया करती थी कि नहीं ? न तो आपको ख़बर है और न होगी कि ख्रीष्टधर्मावलंबी कैसे होते हैं। इन लोगों को ख्रीष्टधर्मावलंबी होने का गौरव है, मनुष्य होने का गौरव नहीं है। और तो और, वह चीज़, जिसने इनके पैग़ंबर के जन्म के समय से उनको मूढ़विश्वास के निरे मनुष्यत्व के रंग में रंग दिया है, उसका भी ये लोग इसलिए आदर नहीं करते कि यह मनुष्य के स्वभाव में है, बल्कि इसलिए कि यह मसीह का वचन है, मसीह का कर्म है। वह तो कहिए ख़ैरियत है कि मसीह ऐसे पुण्यात्मा थे और ये लोग उनके पुण्यों को स्वीकार करते हैं। परन्तु इस श्रेष्टता से क्या लाभ है ? क्योंकि ये लोग उनके पुण्यों का नहीं, वरन् उनके नाम का प्रचार करना चाहते हैं, कि जिससे वह और महात्माओं के नामों पर बादल की तरह छा जाये

और उनको छिपा दे। ये लोग केवल उनके नाम से मतलब रखते हैं, और बस।

सलाहुद्दीन—कदाचित् तुम्हारा मतलब यह है कि यदि ऐसा न होता तो वे लोग तुम्हारे और सुलतान के ईसाई हो जाने पर क्यों आग्रह करते, मानो ईसाई हुए बिना न कोई स्त्री अपने पुरुष से प्रेम कर सकती है और न पुरुष अपनी स्त्री से ?

सित्ता—हाँ, यही मतलब है। उनकी समझ में केवल एक खीष्टधर्मावलंबी ही उस प्रेम का निर्णय कर सकता है जो सृष्टिकर्त्ता ने स्त्री और पुरुष के हृदयों में रख दिया है।

सलाहुद्दीन—ईसाई ऐसी २ बहुत सी बेहूदा बातें मानते हैं। इसलिए यदि उनका यह भी ख्याल हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु देखो तो तुम भी भ्रम में हो। इनमें से जो लोग मेरे उद्देश्यों में रुकावटें पैदा कर रहे हैं और अक्का को अपने लालची पंजों से छोड़ना नहीं चाहते, वह टेंपलर हैं, न कि ईसाई। और अक्का ही वह जगह है जिसे रिचर्ड की बहिन हमारे भाई बादशाह के यहाँ लेकर आती। फिर दूसरी बात यह है कि अपने सिपाहियाना उद्देशों को छिपाये रखने के लिये इन लोगों

को संन्यासी बनकर रहना पड़ता है, और संन्यासी भी ऐसे कि बिल्कुल सीधे सादे भोले भाले। और मजा यह है कि केवल एक क्षणिक विजय प्राप्त करने के लिए इन लोगों ने इस अल्पकालिक संधि के शेष होने की भी प्रतीक्षा नहीं की। अच्छा है। यों ही चलने दो। और क्या ? चलने दो इसी तरह। इसमें मेरी कोई हानि नहीं। कैसा अच्छा होता कि और सब बातें भी वैसी ही हो जातीं जैसा कि चाहिए।

सित्ता—भाई, यह आपको क्या हो गया ? अब आख़िर और किस चीज़ की घबराहट है ?

सलाहुद्दीन—बात क्या होती, वही परेशानी जो मुझे सदा रहा करती है। मैं पिताजी से मिलने को 'लबनान' गया था। वह भी अपनी चिंताओं में घुले जा रहे हैं। और—

सित्ता—हाय !

सलाहुद्दीन—उनका काम किसी तरह नहीं चलता। हर तरफ़ से तंगी ही तंगी है। कभी यहाँ कमी पड़ जाती है कभी वहाँ—

सित्ता—काहे की तंगी ? काहे की कमी ?

सलाहुद्दीन—उसी की जिसका मैं नाम भी नहीं लेना चाहता। वही जो मेरे पास होता है तो बेकार मालूम होता है और जब नहीं होता तो बिना उसके काम चलता दिखाई नहीं देता। हाफ़ी कहाँ है? कोई उसे बुलाने गया कि नहीं? आह! यह अभागा पापी धन!—आह! हाफ़ी तुम आ गये!

[हाफ़ी आता है]

दूसरा दृश्य ।

हाफ़ी, सलाहुद्दीन, और सित्ता ।

हाफ़ी—संभवतः मिस्र देश से रुपया आ चुका है । परमात्मा की कृपा से बहुत सा हो !

सलाहुद्दीन—क्या तुम्हें इसकी ख़बर मिल चुकी है ?

हाफ़ी—मुझे ? जी नहीं, मुझे ख़बर नहीं । मेरा ख्याल था कि आ गया होगा, और उसी को देने के लिए हुज़ूर ने मुझे याद किया है ।

सलाहुद्दीन—जो कुछ हो, तुम सित्ता को १००० दीनार अदा कर दो ।

[चिंता से इधर उधर टहलने लगता है ।]

हाफ़ी—हुज़ूर, अदा करूँ या वसूल ? यह तो कुछ न लेने से भी बुरा हुआ । और सित्ता को ?—फिर सित्ता को ? फिर पराजय हुई ?—इस बार फिर शतरंज में हार गये ?—अहा ! बिसात तो यहीं रखी है ।

सित्ता—तुम्हें मेरी जीत गवारा नहीं, क्यों ?

हाफ़ी—[बिसात को ध्यान से देखकर] क्या कहा ? गवारा नहीं ? जब आपको ख़ूब मालूम है कि—

सित्ता—[इशारा करके] हुँह !—हाफ़ी—हुँह !

हाफ़ी—[बिसात को अच्छी तरह देखकर] सरकार ! आपको तो ख़ुद ही गवारा नहीं ।

सित्ता—हाफ़ी, हुश !

हाफ़ी—[सित्ता से] ये सुफ़ैद मुहरे आपके थे ? आप ही ने शह दी थी ?

सित्ता—[दिल में] अच्छा हुआ भाई ने नहीं सुना ।

हाफ़ी—यह उनकी चाल है ।

सित्ता—[हाफ़ी के निकट होकर] इनसे कह दो कि मुझे रुपया अदा किया जा सकता है ।

हाफ़ी—[बिसात पर झुके हुए] जी हाँ, जैसा आप सदा लिया करती हैं इस बार भी मिल जायगा ।

सित्ता—क्या भद्दी बात है ! दीवाने हुए हो क्या ?

हाफ़ी—अभी खेल शेष थोड़े ही हुआ है । हुज़ूर, आप तो अब भी जीत सकते हैं ।

सलाहुद्दीन—[बेपरवाही से] अच्छा, अच्छा ! तुम रुपया दे दो । दे दो ।

हाफ़ी—दे दूँ, हुज़ूर ? दे दूँ ? हुज़ूर का फ़रज़ीन तो यह रक्खा है ।

सलाहुद्दीन—[उसी तरह] अरे मियाँ! उसकी गिनती नहीं होती। उसकी चाल ही नहीं है।

सित्ता—[अलग हाफ़ी से] बस, रहने दो। तुम कह दो कि मैं रुपये मंगा सकती हूँ।

हाफ़ी—[बिसात की परीक्षा में मग्न] जी, सरकार! बेजा है। सदा यों ही होता है—फ़रज़ीन की चाल न सही। वह पिट ही गया सही। फिर भी किसी तरह मात नहीं है।

सलाहुद्दीन—[आगे बढ़कर और बिसात को ज़मीन पर पटक कर] हाँ, मुझे मात है। मैं यों ही चाहता हूँ, बस।

हाफ़ी—वाह! जैसा खेल वैसी जीत। और जैसी जीत है वैसे ही बदा हुआ रुपया भी अदा किया जायेगा। बहुत अच्छा!

सलाहुद्दीन—[सित्ता से] यह क्या कह रहा है? क्या बक रहा है?

सित्ता—[बार बार हाफ़ी को इशारा करके] भाई, आप तो उसे खूब जानते हैं। हर काम में रोड़े अटकाता है। चाहता है कि उसकी मिन्नत की जाये। जल मरना तो है ही।

सलाहुद्दीन—तुमसे जलता है ? नहीं बहिन, तुमसे नहीं जलता होगा। हाफ़ी, मैं यह क्या सुन रहा हूँ ? तुम और ईर्षा ? क्यों ?

हाफ़ी—जी हुज़ूर, शायद। हो तो सकता है। क्या अच्छा होता जो उनका सा हृदय और मस्तिष्क मेरे पास भी होता !

सित्ता—परन्तु आज तक तो भाई ने बदा हुआ पूरा पूरा अदा किया है, और आज भी पूरा ही अदा करेंगे। अब तुम इनको उसकाओ मत। लो, अब जाओ। मियाँ हाफ़ी, जाओ। मैं रुपये खुद मंगा लूंगी।

हाफ़ी—जी नहीं, मैं ऐसी बेकार बात से बाज़ आया। आख़िर कभी न कभी तो बताना ही पड़ेगा।

सलाहुद्दीन—कैसे ? क्या ?

सित्ता—हाफ़ी, तुम्हारी यही प्रतिज्ञा थी ? तुमने जो मुझे बचन दिया था वह यों ही पूरा होगा ?

हाफ़ी—मुझे क्या ख़बर थी, सरकार, कि बात इतनी दूर तक पहुँचेगी ?

सलाहुद्दीन—वह है क्या आख़िर ? मैं तो ख़ाक न समझा।

सित्ता—हाफ़ी, कृपया ज़रा सोच समझकर बात करो।

सलाहुद्दीन—यह तो कुछ आश्चर्य की बात मालूम होती है। वह क्या बात है जिसके लिए यह एक अनजान आदमी से इस तरह अनुनय विनय कर रही है। और तो और, एक दरवेश से! मैं आख़िर इसका भाई हूँ, मुझसे क्यों नहीं कहती?—हाफ़ी, देखो, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, बोलो, वह क्या बात है?

सित्ता—भाई जान, आपको एक ज़रा सी बात के लिये इतना उद्विग्न न होना चाहिए। भला, ऐसा भी क्या है, आप अकारण ही घबराये जाते हैं। आप खूब जानते हैं मैं पहिले भी कई बार शतरंज ही में आप से इतने इतने रुपये जीत चुकी हूँ। अब इस समय न मुझे रुपये की आवश्यकता है और न हाफ़ी के ख़ज़ाने ही में इतना रुपया है। इसलिए मैं अभी उसे आपके ऊपर बक़ाया रहने देती हूँ। परन्तु भाई जान, मेरी कदापि यह इच्छा नहीं कि यह रुपये आपको दे डालूँ, या हाफ़ी के ख़ज़ाने ही पर न्यौछावर कर दूं।

हाफ़ी—परन्तु इतनी ही सी बात होती तब भी अच्छा था।

सित्ता—हाँ, ऐसे ऐसे और रुपये भी तो हैं जिन्हें मैंने धरोहर की तरह खज़ाने ही के संदूक़ में छोड़ रक्खा है। अच्छा, और वह जो आपने मुझे कुछ महीने तक वृत्ति दी थी वह भी अभी बाक़ी पड़ी है।

हाफ़ी—अभी मामला शेष थोड़े ही हुआ है।

सलाहुद्दीन—अभी शेष नहीं हुआ ? बताओ फिर और क्या है ?

हाफ़ी—जब से हम मिस्र से रुपये के आने की प्रतीक्षा में हैं इन्होंने—

सित्ता—[सलाहुद्दीन से] भाई, आप इस आदमी की बकबक क्यों सुन रहे हैं ?

हाफ़ी—केवल यही नहीं कि इन्होंने मुझसे कुछ नहीं लिया वरन्—

सलाहुद्दीन—कैसी अच्छी लड़की है ! हाँ, तो यों कहो कि इन्होंने उधार भी दिया है। क्यों ?

हाफ़ी—हुज़ूर, इन्होंने आपके दरबार का तमाम खरच अदा किया है और सदा से आपके तमाम खरच को इसी तरह बिना सहायता के पूरा करती रही हैं।

सलाहुद्दीन—[सित्ता को सीने से लगाकर] हाँ, निस्संदेह, मेरी बहिन ऐसी ही है।

सित्ता—परन्तु मुझे ऐसे काम करने के लिए इतना मालदार किसने बनाया ? मेरे भाई ने ही न ?

हाफ़ी—इन्हें भी वह बहुत जल्द ऐसा ही कंगाल कर देंगे जैसे ख़ुद हैं।

सलाहुद्दीन—मैं कंगाल हूँ ? सित्ता का भाई कंगाल है ? इस समय मेरे पास जो धन है तुमही बताओ कि इससे कब ज्यादा था और कब कम—एक वर्दी, एक तलवार, एक घोड़ा—और एक कवच ? और मुझे चाहिए ही क्या ? और यह धन मेरे हाथ से कहाँ जा सकता है ? फिर भी, हाफ़ी, मुझे तुम से एक शिकायत है।

सित्ता—नहीं, भाई, इस बेचारे से क्या शिकायत ? कैसा अच्छा होता जो मैं इसी तरह पिता जी की चिन्ताओं को भी कम कर सकती !

सलाहुद्दीन—आह ! तुमने फिर मेरे आनन्द पर पानी फेर दिया। मुझे तो न किसी चीज़ की आवश्यकता है, न हो सकती है। परन्तु उनको आवश्यकता ही आवश्यकता है, और हम सब उनके साथ एकत्रित हैं।

अब बताओ मैं क्या करूँ। सम्भव है मित्र से रुपये आने में अभी देर हो। मालूम नहीं यह देर क्यों हो रही है। वहाँ तो हर प्रकार की शान्ति है। मैं हाथ रोकने को, खरच में कमी करने को, रुपये बचाने को तय्यार हूँ, परन्तु वहीं तक जहाँ तक मुझसे सम्बन्ध हो और मेरे सिवाय किसी दूसरे को कष्ट नहीं पहुँचता। परन्तु इससे भी क्या काम चलेगा? एक घोड़ा, एक वर्दी, एक तलवार, ये चीज़ें तो मेरे पास होनी ही चाहिएँ। और कवच के विषय में भी कमी नहीं हो सकती। वह तो यों भी बहुत कम माँगता है—वह बस मेरा हृदय माँगता है और कुछ नहीं। मैं शपथ करके कहता हूँ, हाफ़ी मुझे तुम्हारे ख़ज़ाने की बचत पर बड़ा भरोसा था।

हाफ़ी—बचत? अब हुज़ूर स्वयं ही बतायें कि यदि मैं कुछ बचत दिखाता तो हुज़ूर मुझे सूली पर चढ़ा देते या नहीं? या कम से कम मेरा गला तो अवश्य घोंट दिया जाता। इससे तो रुपये हड़प कर लेने ही में कम भय था।

सलाहुद्दीन—अच्छा, तो अब बताओ क्या किया जाय? क्या तुम पहले ही यह नहीं कह सकते थे के सित्ता के सिवा किसी और से उधार लेते?

सित्ता—भाई, आप समझते हैं कि मैं अपना इतना बड़ा अधिकार छोड़ दूँगी, और वह भी उसके हाथ में? मैं तो अब भी अपने इस अधिकार की दावेदार हूँ। मैं भी ऐसी बिल्कुल कंगाल थोड़े ही हो गई हूँ।

सलाहुद्दीन—बिल्कुल कंगाल नहीं हुईं? हाँ, बस इसी की कमी थी। हाफ़ी, जाओ, जल्दी जाकर प्रबन्ध करो। जिससे और जिस तरह से बने रुपये जमा करके लाओ। जाओ, प्रतिज्ञा करके उधार लो। बस इतना ध्यान रखना कि उन लोगों से उधार न लेना जिनको खुद मैंने धनवान् बनाया है। उनसे उधार लेना तो ऐसा ही है कि मानो मैं उनसे अपने अनुग्रह वापस लिये लेता हूँ। जो लोग सब से ज्यादा कंजूस हों उन्हीं के पास जाओ। ऐसे ही लोग जल्दी से रुपये देंगे भी। वह ख़ूब जानते हैं कि उनका रुपया मेरे पास कितना कुछ फलता फूलता है।

हाफ़ी—हुज़ूर, मैं तो ऐसे किसी आदमी को नहीं जानता।

सित्ता—ऐ है! मुझे अभी याद आया। हाफ़ी, मैंने सुना है तुम्हारा मित्र वापस आ चुका है।

हाफ़ी—मित्र ? मेरा मित्र ? वह कौन है ?

सित्ता—वही यहूदी जिसकी तुम बड़ी प्रशंसा किया करते हो।

हाफ़ी—यहूदी की प्रशंसा किया करता हूँ ? मैं प्रशंसा किया करता हूँ ?

सित्ता—वही जिसे परमात्मा ने—देखो, मुझे ठीक ठीक तुम्हारे शब्द याद आ गये—जिसे परमात्मा ने पृथ्वी की बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी सब प्रकार की अनगिनती सम्पत्तियाँ दी हैं।

हाफ़ी—क्या ? मैंने ऐसा नहीं कहा था, सरकार। मेरा इससे क्या मतलब था ?

सित्ता—सब से छोटी सम्पत्ति धन, और सब से बड़ी सम्पत्ति बुद्धि।

हाफ़ी—क्या, सरकार ? एक यहूदी के विषय में ? मैंने किसी यहूदी के विषय में ऐसा कहा था ?

सित्ता—अच्छा, तुमने अपने मित्र नातन के विषय में ऐसा नहीं कहा था ?

हाफ़ी—जी हाँ, सरकार ठीक है। उसके विषय में—नातन के विषय में!—मुझे उसका ख्याल भी नहीं आया,

सरकार। तो यह सच है कि आखिर वह अपने घर वापस आ गया? हाँ, तब तो, सरकार, मालूम होता है उसका काम अच्छा चल रहा है।—जी हाँ! उसे लोग किसी समय बुद्धिमान् कहा करते थे, और धनवान् भी।

सित्ता—अब तो लोग कहते हैं वह ऐसा धनवान् हो गया है कि पहिले कभी न था। शहर भर में धूम मच रही है कि वह बहुत सा धन, तथा बड़ी २ मूल्यवान् वस्तुएँ लाया है।

हाफ़ी—अच्छा, यदि वह फिर धनवान् हो गया है तब तो समझिए कि वह बुद्धिमान् भी अवश्य हो गया होगा।

सित्ता—हाफ़ी, तुम्हारा क्या ख्याल है? तुम उसी के पास क्यों न जाओ?—ए?

हाफ़ी—उसके पास क्यों न जाऊँ? उधार माँगने? सरकार, आप उसे क्या समझती हैं? भला वह उधार देनेवाला है! उसकी बुद्धि इसी में तो है कि वह किसी को उधार नहीं देता।

सित्ता—तुमने तो पहिले मेरे सामने उसका बिल्कुल और ही चित्र अंकित किया था।

हाफ़ी—अत्यंत आवश्यकता के समय वह वस्तुएँ दे देगा, परन्तु रुपये तो वह कदापि न देगा।—फिर भी और बातों में वह और यहूदियों की तरह नहीं है। वह बुद्धिमान् है, रहना जानता है, और शतरंज खूब खेलता है। परंतु केवल अच्छी बातों में नहीं, वरन् बुरी बातों में भी वह और सब यहूदियों से बढ़ा हुआ है। सरकार, उस पर कभी भरोसा न कीजिएगा।—यह सच है कि वह दीन दुःखियों को देता है और कदाचित् उतना ही देता है जितना हमारे सरकार देते हैं या यदि उतना नहीं भी देता तो उसी प्रकार आनन्द से अवश्य देता है। परन्तु है अजब तरह का आदमी। ईसाई, मुसलमान, अग्निपूजक, उसके लिए सब समान हैं।

सित्ता—वह ऐसा आदमी है तो फिर—

सलाहुद्दीन—परंतु यह क्या बात है कि मैंने इस आदमी का हाल नहीं सुना—

सित्ता—तो क्या वह भाईजान को भी उधार न देगा ¿ सुलतान सलाहुद्दीन को भी न देगा? यह तो बेचारे औरों के लिए माँगते हैं, कुछ अपने लिए थोड़े ही लेते हैं।

हाफ़ी—सरकार, यहूदियों में यही बात है, और वह भी ऐसा नीच यहूदी !—निश्चय जानिए, हुज़ूर, मैं सच सच कह रहा हूँ कि जहाँ तक उदारता से सम्बन्ध है वह आपसे बेहद ईर्षा करता है, और ऐसा मालूम होता है कि पृथ्वी में जितनी बार "परमेश्वर तेरा भला करे !" कहा जाये, वह यह चाहता है कि वह सब उसीके लिए हो। और यही कारण है कि वह कभी किसी को कभी उधार नहीं देता, और अपने पास सब समय इतना रखना चाहता है कि लोगों को बहुत सा दे सके। परन्तु उसके धर्म ने दान-पुण्य की आज्ञा दी है परंतु मीठे बोलने की आज्ञा नहीं दी, इसलिए इसी दान-पुण्य ने उस अभागे को पृथ्वी में सब से ज़्यादा अकलखुरा कर रखा है। यह तो ठीक है कि कुछ दिनों से मुझमें और उसमें कुछ मतभेद सा है, पर उससे यह ख्याल कीजिए कि मैं उसके साथ अन्याय करता हूँ। उसमें और तो सब बातें अच्छी हैं, बस एक यही बुराई है कि वह उधार नहीं देता। तो अब मैं जाकर औरों का द्वार खटखटाता हूँ—अहा ! ख़ूब याद आया। मराको का एक मुसलमान है। वह धनवान् भी है और कंजूस भी—अच्छा, अब मैं चलता हूँ।

सित्ता—हाफ़ी, ऐसी भी क्या जल्दी है ?

सलाहुद्दीन —जाने दो, जाने दो।

[हाफ़ी जाता है]

तीसरा दृश्य

सित्ता और सलाहुद्दीन ।

सित्ता—[हाफ़ी को जाते हुए देखकर] वह तो ऐसी जल्दी जल्दी जा रहा है जैसे भागना ही चाहता था। आखिर वह करना क्या चाहता है ? प्रश्न यह है कि उसने नातन के विषय में स्वयं धोखा खाया है या हमें धोखा देना चाहता है ?

सलाहुद्दीन—यह क्यों ? और मुझसे क्यों पूछती हो ? मुझे तो अब तक यही न मालूम हुआ कि तुम लोग किसके विषय में बातें कर रहे थे। मैंने तो आजतक तुम्हारे इस यहूदी नातन का नाम भी नहीं सुना था।

सित्ता—यह कैसे संभव है कि आप ऐसे आदमी को न जानते हों जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि उसने हज़रत सुलैमान और हज़रत दाऊद की क़ब्रों को भी बरबाद कर डाला है। कहते हैं उसके पास एक मंत्र है, और एक सिद्धि है जिससे वह उनकी मुहरें तोड़ सकता है, और वहीं से नित्य ऐसी ऐसी मूल्यवान् वस्तुएँ निकाल

निकाल कर लाता है जिनसे मालूम होता है कि यह वहीं की हैं और कहीं की नहीं।

सलाहुद्दीन—यदि मान भी लिया जाये कि उसने अपना तमाम धन क़ब्रों ही में से खोद खोद कर निकाला है, तब भी यह स्पष्ट है कि हज़रत सुलैमान या दाऊद की क़ब्रों में से नहीं निकला है बल्कि उन क़ब्रों में से निकला है जिनमें मूढ़ लोग गड़े हुए हैं।

सित्ता—या दुराचारी लोग होंगे!—जो कुछ भी हो, कहीं से पैदा किया हो परंतु इतना अवश्य है कि उसका धन कुबेर के खज़ाने से ज्यादा है, अनन्त है।

सलाहुद्दीन—यह तो स्पष्ट है, क्योंकि मैंने सुना है वह सौदागर है।

सित्ता—उसके लादनेवाले जानवर हर रास्ते पर दिखाई देते हैं। उसके क़ाफ़ले हर मैदान में चलते हैं। उसके जहाज़ हर बन्दरगाह में खड़े रहते हैं। इसी हाफ़ी ने मुझसे बहुधा यह वर्णन किया है, वरन् वह यह भी कहा करता है कि उसका यह यहूदी मित्र अपनी इस बुद्धि और परिश्रम से कमाये हुए धन को बड़े ठाठबाट और सौजन्य से खरच करता है। उसका दिल धर्मद्रोहिता से बिल्कुल

पवित्र है, पुण्य प्राप्त करने को तय्यार और पुण्यकर्म करने पर तुला रहता है।

सलाहुद्दीन—परंतु इन सब गुणों के होते हुए भी वह अभी इतने संदेह के शब्दों में और ऐसी उदासीनता से उसकी बात कर रहा था।

सित्ता—नहीं, उदासीनता तो नहीं थी, घबराहट थी। उसे कदाचित् संदेह था कि कहीं वह उसकी बेहद प्रशंसा तो नहीं कर रहा है। फिर यह भी ख्याल होगा कि उस बेचारे को अकारण दोष भी न दे। क्या सचमुच यह बात है कि उसकी जाति का सर्वश्रेष्ठ आदमी भी अपनी जाति की दुर्बलताओं से बचा हुआ नहीं? कदाचित् यही कारण था कि हाफ़ी को लज्जा सी हो रही थी।—अच्छा, जो कुछ भी हो, वह और यहूदियों से, ज्यादा हो या कम, धनवान् तो वह अवश्य है, और हमारे लिए अभी इतना ही चाहिए।

सलाहुद्दीन—परंतु, बहिन, तुम उसका धन ज़बर-दस्ती तो नहीं ले सकती हो।

सित्ता—अच्छा हुआ! ज़बरदस्ती आप किसे कहते हैं? आग और तलवार के ज़ोर से? नहीं, कदापि

नहीं। दुर्बल आदमियों के लिए जबरदस्ती की क्या जरूरत है? खुद उनकी दुर्बलता ही काफ़ी है।—अच्छा भाईजान, चलिए, अन्तःपुर में चलें। मैंने अभी कल ही एक गानेवाली औरत खरीदी है। आपको उसका गाना सुनवाऊंगी और हाँ, मैंने नातन के विषय में एक उपाय सोचा है। इतनी देर में उस पर भी विचार कर लूँगी। आइये, चलें।

चौथा दृश्य ।

नातन के मकान के सामने जहाँ खजूरों का झुंड है ।

[नातन और रीशा बाहर आते हैं । दाया बाहर से उनकी ओर आती है ।]

रीशा—पिताजी, आपने बड़ी देर कर दी । अब तो वह नहीं मिल सकता ।

नातन—अच्छा, जो वह इन खजूरों में न मिला तो हम उसे कहीं और ढूंढेंगे । ज़रा शांत हो । वह देखो ! दाया हमारी ही ओर आ रही है ।

रीशा—उसने उसे कहीं भी न पाया होगा ।

नातन—नहीं, कदाचित ऐसा तो नहीं ।

रीशा—तो वह ऐसी सुस्त क्यों आ रही है ?

नातन—उसने हमें अब तक नहीं देखा, और—

रीशा—अब तो देख लिया ।

नातन—और तेज़ भी चलने लगी है । देखो, वह देखो ।—ज़रा दम लो, ठहरो ।

रीशा—पिताजी, तुम ऐसी बेटी चाहते हो जो ऐसे समय में भी शांत रहे और उस बेचारे की परवा भी न करे जिसने उसके प्राण बचाये हों ?—वह जीवन जो उसे इस लिए प्यारा है कि परमात्मा ने उसे तुम्हारे द्वारा दिया है।

नातन—नहीं, मैं तो ऐसी ही बेटी चाहता हूँ जैसी तुम हो। परंतु मैं ख़ूब समझता हूँ कि इस समय तुम्हारे हृदय को कुछ और ही तरह के भावों ने व्याकुल कर रखा है।

रीशा—वह क्या, पिताजी ?

नातन—मुझसे पूछती हो, और इतनी लज्जित होकर ? तुम्हारे हृदय पर जो कुछ बीत रहा है वह सब स्वाभाविक बात है, पवित्र है, निष्काम है। तुम किसी प्रकार की चिंता न करो। मुझे स्वयं कोई चिंता या डर नहीं, परंतु—मुझसे इतनी प्रतिज्ञा करो कि जब तुम्हारा हृदय तुम से कुछ स्पष्ट-रूप से कहे तो तुम उसकी छोटी से छोटी वासना को भी मुझ से नहीं छिपाओगी। समझीं ?

रीशा—मैं तो आपही इस डर से काँपी जाती हूँ कि कहीं ऐसा न हो कि मेरा हृदय आप से अपनी कोई बात छिपाये।

नातन— अच्छा, अब इसकी बात जाने दो। इसका तो सदा के लिए निश्चय हो गया।—यह लो, दाया आ पहुँची।—कहो, क्या ख़बर है ?

दाया—वह अब तक खजूरों ही के तले टहल रहा है, और अभी थोड़ी देर में इस दीवार के पास से जायगा।—रे, वह देखो! वह आ रहा है!

रीशा—अहा! मालूम होता है कि वह इस सोच में है कि जाऊँ किधर—आगे बढ़ूं या वापस चला जाऊँ, दाहनी ओर जाऊँ कि बाईं ओर।

दाया—नहीं, नहीं। वह कभी कभी मठ के पास से होकर जाया करता है। यदि अब भी उधर जा रहा है तो यहीं से होकर जायेगा। चाहे बद लो।

रीशा—ठीक, ठीक! तुमने उससे बातें भी कीं या नहीं? आज उसका क्या ख्याल है?

दाया—जैसा सदा होता है, और कैसा होता?

नातन—देखो, वह कहीं तुम्हें देख न ले। ज़रा और पीछे को हो जाओ, बल्कि भीतर ही चली जाओ तो अच्छा है।

रीशा—बस, एक बार और देख लेने दो, पिताजी! ओह! इस निगोड़ी झाड़ी ने उसे ओझल कर दिया।

दाया—आओ, आओ! तुम्हारे पिता ठीक कह रहे हैं। जो कहीं उसने तुम्हें देख पाया तो वह अभी अंतर्धान हो जायेगा।

रीशा—अरे! यह निगोड़ी मनहूस झाड़ी!

नातन—बुराई यह है कि तुम ऐसी जगह खड़ी हो कि यदि वह एक दम इस झाड़ी में से निकल आया तो तुम्हें अवश्य देख लेगा! एक दम चल दो।

दाया—आओ, आओ! मैं तुम्हें एक खिड़की बताऊँ। हम वहीं से उसे देखेंगे। आओ!

रीशा—सच?

[दोनों भीतर चली जाती हैं]

पाँचवाँ दृश्य ।

नातन और उसके बाद ही टेंपलर आता है ।

नातन—[अपने आप] मैं इस विचित्र आदमी से बचना चाहता हूँ। उसके इस कठिन और उग्र पुण्य से मुझे घबराहट होती है। आश्चर्य की बात है कि एक मनुष्य में ऐसी शक्ति छिपी हो कि वह किसी और मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क में ऐसी हलचल मचा दे !—यह लो, वह आ पहुँचा ! परमात्मा ही जाने ! है गबरू परंतु बड़ा वीर। मुझे यह व्यक्ति बहुत ही पसन्द है। उसकी ये पराक्रमपूर्ण दृष्टि और यह भारी भरकम चाल कैसी अच्छी मालूम होती है ! देखने में तो यह आदमी रूखा और कड़ा मालूम होता है, पर स्वभाव कदापि ऐसा न होगा। [ध्यान से] मैंने इसी रूप का मनुष्य कहीं और भी देखा है !—[टेंपलर से] भद्र फिरंगी, मुझे क्षमा कीजिएगा।

टेंपलर—क्या ? काहे की क्षमा ?

नातन—यदि अनुमति हो—

टेंपलर—क्या, यहूदी, क्या कहते हो?

नातन—अनुमति हो तो कुछ कहूँ।

टेंपलर—मैं तुम्हें कैसे रोक सकता हूँ? हाँ, कहो, पर संक्षेप से।

नातन—ज़रा ठहरिए, परमात्मा की दुहाई! जल्दी न कीजिए। और एक ऐसे व्यक्ति के पास से अभी न जाइये जो आपके अनुग्रह के बोझ से दबा हुआ है।

टेंपलर—वह कैसे? अच्छा, हाँ; मैं समझ गया। मैं कदाचित् ठीक समझा हूँ कि आप—

नातन—जी हाँ! मुझे नातन कहते हैं। मैं उसका पिता हूँ जिसको आप ने जान पर खेलकर अपने साहस से आग से निकाला है और मैं इसलिए यहाँ आया हूँ कि—

टेंपलर—यदि आप मुझे धन्यवाद देने आये हैं तो कृपा कीजिए—क्षमा कीजिए। इस छोटो सी बात के लिए मैं पहिले ही धन्यवाद का इतना बड़ा बोझ उठाये फिरता हूँ। मैंने आप पर अनुग्रह ही क्या की है? क्या मुझे यह मालूम था कि वह लड़की आपकी बेटी है? यह तो प्रत्येक टेंपलर का कर्त्तव्य है कि जिस मानव-संतान का

आवश्यकता हो उसकी सहायता करे। इसके अतिरिक्त उस समय स्वयं मेरा ही जीवन मेरे लिए एक भार हो रहा था। इसलिए मुझे बड़ा आनंद हुआ और यह अवसर मुझे अत्यंत सुलभ मालूम हुआ कि मैं किसी और के लिए अपना जीवन शंका में डाल दूं—चाहे वह एक यहूदी की बच्ची ही के लिए क्यों न हो।

नातन—कितनी बड़ी बात कही है! परन्तु कैसी बेहूदा बात है! और इन दोनों का संबंध समझ में भी आता है। लज्जा और प्रेम बहुधा ऐसा रूप धारण कर लेते हैं जो देखने में घृणित मालूम होता है और यह केवल इसलिए कि लोग उनकी प्रशंसा न कर सकें।—परंतु जब मेरे धन्यवाद की यह ऐसी अवहेलना करते हैं तो किसी और प्रकार के बदले को कितना कुछ तुच्छ न समझेंगे? —नाइट महाशय! यदि आप हमारे यहाँ एक अनजान और क़ैदी न होते, तो कदापि मैं ऐसी धृष्टता और साहस से बात न करता—फिर भी, अब यह बताइए कि मैं आपको क्या सेवा कर सकता हूँ?

टेंपलर—आप? कुछ नहीं।

नातन—मैं धनवान आदमी हूँ।

टेंपलर—ज्यादा धनवान यहूदी को मैं कुछ ज्यादा अच्छा यहूदी नहीं समझता हूँ।

नातन—फिर भी क्या इस बात पर भी यह नहीं समझते कि उसके पास जो कुछ भी अच्छी वस्तु उपस्थित है वह आपके लिए लाभदायक हो सकती है—अर्थात् उसका धन ?

टेंपलर—बहुत अच्छा। मैं इस विषय में बिल्कुल इनकार न करूँगा। एक चोग़ा स्वीकार कर लूँगा। बस ? और जब मेरे इस चोग़े के चीथड़े हो जायँगे और इसमें रफ़ू और जोड़ की भी जगह न रहेगी, तब मैं आपके पास आऊँगा और आपसे कपड़ा या नक़द लेकर एक नया चोग़ा बना लूँगा। अब और आप क्या चाहते हैं ?—नहीं, आप घबराइये नहीं, अभी तो आप निर्भय ही हैं—अभी बात दूर तक नहीं पहुँची है। देखिए न, अभी तो इसका कुछ और भी प्रबंध हो सकता है। बस केवल इसी एक कोने पर बुरा धब्बा लग गया है, और यह भी यों लगा कि जब मैं आपकी लड़की को आग की लपटों में से निकाल कर बाहर ला रहा था तो यह हिस्सा आग में झुलस गया।

नातन—[चोग़े के झुलसे हुए हिस्से को हाथ में लेकर और उसे ध्यान से देखते हुए] वाह वा! कितने आश्चर्य की बात है कि यह बुरा धब्बा, यह आग का चिह्न किसी के वीरत्व का ख़ुद उसके होंठों से अच्छा साक्षी है?—महाशय, मेरा जी चाहता है कि मैं इसे चूमूँ—इस मस्तक को।—अहा! क्षमा कीजिएगा, मैंने जानबूझ कर ऐसा नहीं किया।

टेंपलर—क्या?

नातन—यह कि इस चोग़े पर आँसू के बूँद टपकाऊँ।

टेंपलर—क्या हरज है? इस पर ऐसी २ बहुत सी बूँदें गिर चुकी हैं। [दिल में] यह यहूदी तो मुझे बेतरह बेचैन करने लगा!

नातन—केवल इतनी कृपा कीजिए कि मुझे इस चोग़े को अपनी बेटी के पास ले जाने की अनुमति दे दीजिए।

टेंपलर—वह किस लिए?

नातन—कि वह बेचारी इस जगह को चूम सके, क्योंकि उसे अब यह आशा तो हो ही नहीं सकती कि वह आपके पैरों को चूम सकेगी।

टेंपलर—परन्तु मियाँ यहूदी !—तुम्हें नातन कहते हैं न ?—अच्छा, तो नातन, तुम बहुत ही सुंदर, मधुर, और ओजस्वी शब्द व्यवहार करते हो। मेरी समझ में नहीं आता कि अब क्या करूँ। कदाचित् कदाचित्—

नातन—आप अपने भावों को जिस प्रकार चाहें दबायें और छिपायें, मैं आपको अच्छी तरह समझ गया हूँ। आपने उस समय जैसी उदारता, पुण्य और सज्जनता का परिचय दिया, उससे और क्या ज़्यादा हो सकता था ? आपके सामने एक लड़की थी, जो भावुकता की प्रतिमूर्ति थी, उसका संदेश लानेवाली स्त्री साक्षात् अनुरोध थी, और उस बेचारी का बाप भी घर से दूर था। ऐसे समय में आपने उसके सम्मान का इतना ख़याल रक्खा। आप इस परीक्षा से दूर रहे—इसलिए दूर रहे कि आपको विजय का निश्चय था—इस विषय में मुझे और भी अधिक आपका कृतज्ञ होना चाहिए।

टेंपलर—मैं मानता हूँ कि आपको कम से कम इतना तो अवश्य मालूम है कि टेंपलरों को कैसे भाव रखने चाहिएँ।

नातन—क्या कहा !—केवल टेंपलरों को ?—और

वह भी केवल इसलिए कि उनके समाज के नियमानुसार ऐसा होना आवश्यक है ? मुझे अच्छी तरह मालूम है कि सज्जनों के भाव कैसे होते हैं, और यह भी जानता हूँ कि सज्जन प्रत्येक देश में होते हैं।

टेंपलर—परन्तु कदाचित् कुछ भेद रहता है। ऐं ?

नातन—जी हाँ, बस इतना ही कि रंग-रूप में भेद होगा, वेश भूषा में भेद होगा, और क्या ?

टेंपलर—और यह भी तो है कि सज्जनता कहीं कम है और कहीं अधिक।

नातन—यह थोड़ा सा भेद तो कोई बड़ी बात नहीं है। हर जगह बड़े आदमी को बहुत सी जमीन की आवश्यकता होती है। थोड़ी सी तंग सी जगह में बहुत से बड़े आदमी हों तो उनकी आपस में इसी तरह टक्करें हुआ करती हैं जैसे घने लगे हुए पेड़ों की डालें एक दूसरी से रगड़ खाती रहती हैं। मध्यम श्रेणी के सज्जन लोग, जैसे हम हैं, झुंड के झुंड मिला करते हैं। परन्तु एक को दूसरे से घृणा न करनी चाहिए। बड़े बड़े समुदाय को छोटे छोटे समुदायों के साथ अच्छी तरह मिल जुल कर रहना चाहिए, और किसी कारण ऊँचे शिखर को कभी भी यह न सोचना

चाहिए कि केवल एक मैं ही ऐसा हूँ जो पृथ्वी से नहीं उगा हूँ।

टेंपलर—आपने बहुत ठीक कहा—फिर भी आपको पहले यह मालूम करना चाहिए कि वह कौन लोग हैं जिन्होंने सब से पहले अपने मानवभ्रातृगण की बुराइयाँ करनी आरम्भ कीं। क्या आपको मालूम नहीं कि वह कौन लोग थे जिन्होंने सब से पहले अपने आपको "परमात्मा के परमभक्त" कहना आरम्भ किया था? यद्यपि मैं उस जाति से घृणा नहीं करता परन्तु उनका यह गर्व मुझे एक आँख नहीं भाता। और यही गर्व उस जाति ने ईसाई और मुसलमान दोनों प्रतिपादन किया है। परिणाम यह हुआ कि ये दोनों जातियाँ भी डींगें मारती हैं कि केवल इन्हीं का परमात्मा सच्चा है। आपको आश्चर्य होता होगा कि मैं टेंपलर होकर ऐसी बातें कर रहा हूँ—पहले तो ईसाई, और फिर टपलर! परन्तु मैं यह पूछता हूँ कि उनकी यह कल्पना कि सच्चा परमात्मा केवल उन्हीं के पास है, और उनका यह धार्मिक उन्माद कि अपने परमात्मा को और सब के परमात्मा से उत्तम और श्रेष्ठ समझें और सारी पृथ्वी को उसके मानने पर बाध्य करें, यह सब बातें कभी

इस समय और इस जगह से अधिकतर बुरे रूप में भी दिखाई दी हैं ? अतः ऐसा कौन व्यक्ति है जिसकी आखों से यहाँ यह परदा न उठ जायेगा ? अच्छा, महाशय, जाने दीजिए। जो चाहे अंधा बना रहे, हमें क्या ? जो कुछ मैंने कहा है उसे भुला दीजिए, और मुझे अनुमति दीजिए।

नातन—मेरे नवयुवक प्रिय मित्र आपको नहीं मालूम कि अब तो मुझे आपसे और भी अधिक सम्बन्ध बढ़ाना चाहिए—अब हम दोनों को मित्र हो जाना चाहिए, अवश्य हो जाना चाहिए—आप जितना जी चाहे मेरी जाति से घृणा कीजिए—हमने स्वयं तो अपनी जाति का वरण किया नहीं। क्या अपनी २ जातियों में केवल आप और मैं ही हूँ ? फिर जाति किसे कहते हैं क्या ईसाई और यहूदी केवल ईसाई और यहूदी ही हैं, मनुष्य नहीं हैं ?—हाँ, मैं आपकी जाति में अपने समान विचार रखनेवाले व्यक्ति को पा गया हूँ, जिसके लिए केवल इतना ही यथेष्ट है कि वह यथार्थ मनुष्य कहलाये।

टेंपलर—हाँ, परमात्मा ही जानता है, उसे आप पा गये !—बस, फिर लाइये हाथ, हाथ मिला लें—मुझे इस

ख़याल से लज्जा आती है कि एक मुहूर्त्त भर के लिए मुझे आपके विषय में बदगुमानी हो गई थी।

नातन—और मुझे इसका गौरव प्राप्त है—क्योंकि साधारण व्यक्तियों के सम्बन्ध में किसीको भ्रम नहीं हुआ करता।

टेंपलर—और असाधारण मनुष्यों को कोई भूल भी तो नहीं सकता। हाँ, नातन अब हम दोनों को अवश्य मित्र हो जाना चाहिए।

नातन—मित्र तो हम हैं ही। अहा हा! इससे मेरी रीशा को कैसा कुछ आनन्द होगा—अहा हा! मेरी आँखें भी कैसा अच्छा दृश्य देख रही हैं! क्या अच्छा होता जो आप इस लड़की को जानते होते!

टेंपलर—मेरी स्वयं अत्यन्त कामना है। परन्तु देखिए तो यह आपके घर से कौन निकला चला आ रहा है। यह आपकी दाया ही है न?

नातन—जी हाँ, वही है। कुछ घबराई हुई आ रही है।

टेंपलर—परमात्मा जाने, मेरी रीशा कुशल से हो!

छठा दृश्य।

[दाया जल्दी २ आती है]

दाया—नातन, ऐ नातन !

नातन—हाँ, हाँ ! तुम इतनी घबराई हुई क्यों हो ?

दाया—नाइट महाशय, क्षमा कीजिएगा। मेरे आने से आपकी बातों में बाधा पड़ी।

नातन—बात क्या है ? बोलो तो।

दाया—सुलतान ने तुम्हें बुलाया है—सुलतान तुमसे कुछ बातें करना चाहता है—सुलतान—हा दैव !

नातन—मुझसे ?—सुलतान !—कदाचित् मैं जो कुछ माल असबाब लाया हूँ वह उसे देखना चाहता है। उससे यह कहला देना चाहिए कि अभी मेरा लाया हुआ कोई माल नहीं खुला है, और खुला है तो बहुत कम।

दाया—नहीं, नहीं-वह कुछ भी नहीं देखना चाहता। वह तो बस तुमसे कुछ बातें करना चाहता है—जितनी जल्दी हो सके।

नातन—अच्छा, तो मैं उसके पास हो आऊँगा—तुम घर जाओ।

दाया—नाइट महाशय ! मैं विनीत भाव से कहती हूँ कि हमें क्षमा कर दीजिएगा । हा परमात्मन् ! हम लोग बहुत उद्विग्न हैं कि सुलतान चाहता क्या है ।

नातन—शीघ्र मालूम हो जायेगा । तुम घर जाओ ।

[दाया चली जाती है]

सातवाँ दृश्य।

नातन और टेंपलर।

टेंपलर—तो मालूम हुआ कि आप अभी तक सुलतान को नहीं जानते, अर्थात् आप उनसे कभी मिले नहीं।

नातन—किस से?—सुलतान से?—नहीं, अब तक साक्षात्कार नहीं हुआ। यह नहीं है कि मैं उनसे बचता था। परन्तु मैंने कभी उनसे मिलने को चेष्टा भी नहीं की; क्योंकि लोगों की जबान से उनके विषय में इतना कुछ सुना कि मैंने बेदेखे मान लेना देखने से अच्छा समझा। परन्तु यदि वह घटना जो आपके संबंध में बताई जाती है ठीक है तो आपके प्राण बचाने से—

टेंपलर—जी हाँ, बिल्कुल ठीक है। मैं इसे कभी नहीं भूल सकता कि अब जो मैं जी रहा हूँ, यह जीवन उन्हीं का दिया हुआ है।

नातन—और इस जीवन से उन्होंने मुझे भी दुगुना, नहीं वरन् तिगुना, जीवन प्रदान किया है। अब इससे मेरे और उनके संबंध बिल्कुल नये हो गये हैं—केवल इसीसे उन्होंने मुझे सदा के लिए अपना आभारी कर लिया है। मैं

उनकी इच्छा जानने के लिए अत्यन्त चिंतित और आश्चर्यान्वित हूँ। मैं हर काम के लिए तय्यार हूँ, और उनसे स्पष्ट स्वीकार कर लूँगा कि मैं जो इस प्रकार उनकी सेवा के लिए तय्यार हूँ यह केवल आपके निमित्त है।

टेंपलर—मुझे स्वयं भी कभी ऐसा अवसर नहीं मिला कि उनको धन्यवाद देता। यों होने को तो मैं कई बार उन रास्तों के पास से गया हूँ जिनसे वह गये हैं। मालूम ऐसा होता है कि मेरा जो प्रभाव उन पर पड़ा था वह पैदा होने के बाद जल्द ही मिट भी गया। संभव है वह अब मुझे कभी याद भी न करते हों। फिर भी एक न एक दिन तो याद करेंगे ही कि वह मेरे भाग्य का निर्णय कर दें। यह यथेष्ट नहीं है कि अब तक मैं केवल उनकी आज्ञा से और उनकी इच्छा पर जी रहा हूँ। अब मुझे यह जानने की आवश्यकता है कि जो जीवन उन्होंने मुझे प्रदान किया है उसे भविष्य में मुझे किस की इच्छा के अनुसार ढालना चाहिए।

नातन—बहुत ठीक!—अच्छा, तो मुझे शीघ्रही उनके पास पहुँचना चाहिए। संभव है—कदाचित् उनके मुख से दैवात् कोई ऐसी बात निकल जाये जिससे मुझे आपका

उल्लेख कर देने का अवसर मिल जाये। क्षमा कीजिएगा, मुझे बहुत जल्दी है। अब मैं ज्यादा नहीं ठहर सकता। अच्छा, अब आप हमारे यहाँ कब आयेंगे ?

टेंपलर—जब अनुमति हो।

नातन—यह तो आपही जब चाहें तब हो सकता है।

टेंपलर—तो आजही सही।

नातन—और धृष्टता क्षमा कीजिएगा, आपका शुभ-नाम ?

टेंपलर—मेरा नाम था—अच्छा, यों कहिए कि—है कुर्दफ़ॉन इश्ताउफ़ेन—कुर्द।

नातन—फ़ॉन इश्ताउफ़ेन ?—इश्ताउफ़ेन ?—इश्ता-उफ़ेन ?

टेंपलर—आपको इससे इतना आश्चर्य क्यों हो रहा है ?

नातन—फ़ॉन इश्ताउफ़ेन ? मेरा विचार है कि इस नाम के और भी कई—

टेंपलर—हाँ, क्यों नहीं ?—अवश्य थे। इस वंश के बहुत से आदमियों की हड्डियाँ यहाँ पड़ी गल रही हैं। स्वयं मेरा चचा—बल्कि कहना चाहिए कि बाप—परन्तु

आप तो मुझे और भी ज्यादा घूरने और ध्यान से देखने लगे। यह बात क्या है ?

नातन—जी नहीं, कुछ नहीं—कुछ भी नहीं। भला आपको देखने से मेरा क्योंकर संतोष हो सकता है ?

टेंपलर—अच्छा, अब आप जाइये—ध्यान से देखने में बहुधा ऐसा होता है कि आँख जितना देखना चाहती है उससे बहुत ज्यादा देख लेती है। नातन, मैं इस दृष्टि से डरता हूँ। अच्छा यह है कि आप मेरे हाल जानने में कुतूहल से काम न लें, वरन् समय और अवसर पर छोड़ दें। [चला जाता है]

नातन—[उसे आश्चर्य के साथ देखते हुए] वह कहता है कि ध्यान से देखने में बहुधा ऐसा होता है कि आँख जितना देखना चाहती है उससे बहुत ज्यादा देख लेती है। यह तो कुछ ऐसा मालूम होता है कि उसने मेरी आत्मा को पुस्तक की तरह पढ़ लिया—सच कहता है। संभव है मुझे स्वयं कुछ ऐसी ही बातों का सामना हो—वही उल्फ़ का आकार, वही चाल, वही बिल्कुल उसी की सी ध्वनि। उल्फ़ भी तो इसी तरह सिर हिलाता हुआ चलता था। उल्फ़ भी इसी तरह बग़ल में तलवार रखकर

चलता था। बिल्कुल इसी तरह वह भी आँखों पर छाया करने के लिए हाथ को माथे पर रक्खा करता था जैसे अपनी निगाहों की बिजली की चमक को छिपाता हो। अहा हा ! देखो यह पुरानी पुरानी बातों की याद किस तरह हमारी प्रकृतियों की गहराइयों में सोती रहती है, और कभी किसी समय केवल एक शब्द, एक स्वर के बदलने से वह एक दम से जैसे जाग उठती है ! क्या सचमुच ऐसा हो सकता है ? फ़ॉन इश्ताउफ़ेन !—हाँ, ठीक। फ़िलिक और इश्ताउफ़ेन—ठीक, ठीक ! अच्छा, इस विषय में मैं अभी और ध्यान करूँगा। अब इस समय तो सलाहुद्दीन के यहाँ चलना चाहिए। परन्तु, अह हा ! दाया सुन रही थी ! ऐ दाया, यहाँ आओ।

———

आठवाँ दृश्य ।

नातन और दाया

नातन—लो, मैं बद कर कहता हूँ कि अब तुम दोनों को यह जानने की इतनी घबराहट नहीं है कि सुलतान मुझ से क्या कहना चाहता है जितनी किसी और बात की खोज लगाने की चिन्ता है ।

दाया—परन्तु इसमें उस बेचारी का क्या दोष है ? तुमने नाइट से अभी और ज्यादा बंधुभाव से बातचीत आरम्भ की ही थी कि इतने में सलाहुद्दीन की तरफ़ से यह निगोड़ा बुलावा आ गया और हमलोगों को खिड़की छोड़-कर हट जाना पड़ा ।

नातन—अच्छा, तो उससे कह दो कि अब नाइट किसी समय किसी मुहूर्त्त में आ पहुँचेगा ।

दाया—सचमुच ?

नातन—दाया, मैं समझता हूँ कि मैं तुम पर भरोसा कर सकता हूँ । कृपया जरा सावधान रहना । तुमको इसका फल मिलेगा । इस विषय में तुम्हारी अंतरात्मा के संतोष का भी उपाय निकल आयेगा । कृपया मेरी चेष्टाओं

पर पानी मत फेर देना। तुम उससे जो कुछ कहो या पूछो, ज़रा सोच समझ कर, आगे पीछे देखकर, संभल कर कहना।

दाया—तुम्हें यह बात अब तक क्योंकर याद रही ? अच्छा, अब मैं जाती हूँ; तुम भी जाओ। वह देखो, मालूम होता है कि सुलतान का दूसरा एलची भी तुम्हें बुलाने के लिए आ रहा है। वह देखो, तुम्हारा दरवेश, तुम्हारा हाफ़ी, इधर ही को आ रहा है।

———

नवाँ दृश्य

नातन और हाफ़ी ।

हाफ़ी—अहा ! मैं तुम्हारी ही तरफ़ जा रहा था ।

नातन—क्या सचमुच ऐसा जरूरी काम है ? आखिर वह मुझसे क्या चाहता है ?

हाफ़ी—कौन ?

नातन—सलाहुद्दीन—मैं उसीके पास जा रहा हूँ ।

हाफ़ी—किस के पास ? सलाहुद्दीन के ?

नातन—क्या तुम सलाहुद्दीन के भेजे हुए नहीं आ रहे हो ?

हाफ़ी—क्या कहा ? मैं—सलाहुद्दीन का भेजा हुआ आया हूँ ?—नहीं जी, बिल्कुल नहीं। क्या उसने तुम्हें बुलाया है ?

नातन—हाँ, बुलाया ही तो है ।

हाफ़ी—तब तो मालूम होता है कि दाँव चल गया ।

नातन—दाँव कैसा, हाफ़ी ?

हाफ़ी—लो, अब बताओ इसमें मेरा क्या दोष है ? परमात्मा जानता है, मेरा कोई दोष नहीं है । वह कौनसो बात

है जो मैंने नहीं कही। तुम्हारे विषय में कितना कुछ झूठ भी बोला कि किसी तरह यह बात टल जाये।

नातन—क्या बात टल जाये? यह किस विषय का उल्लेख कर रहे हो, भई?

हाफ़ी—इसका कि अब तुम सुलतान के ख़ज़ांची हो जाओगे। मुझे तुम पर रोना आता है। परन्तु अपनी आँखों से यह नहीं देखना चाहता। मैं अभी २ जाता हूँ—तुम्हें अच्छी तरह मालूम है कि मैं कहाँ जाऊँगा, और किस रास्ते से जाऊँगा। अच्छा, यह बताओ कि मैं जहाँ जा रहा हूँ वहाँ मेरे उपयुक्त कोई काम ऐसा है जिससे मैं तुम्हारी सेवा करने को तय्यार हूँ। बस इतना ध्यान रक्खो कि मुझ पर इतनाही भार डालना जितना मुझ जैसे एक अभागे नंगे आदमी से संभाला जा सके। बस, मैं जाता हूँ। बताओ, तुम्हारी क्या इच्छा है?

नातन—हाफ़ी, होश की बातें करो। मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आता कि तुम यह क्या बक रहे हो।

हाफ़ी—तुम अपने रुपये की थैलियाँ तो अपने साथ ले ही जाओगे?

नातन—मेरे रुपये की थैलियाँ?

हाफ़ी—हाँ, हाँ! आख़िर तुम्हें सुलतान को कुछ रुपये उधार देना होगा कि नहीं ?

नातन—बस, इतनी ही सी बात थी ?

हाफ़ी—तुम ही ज़रा न्याय से कहो कि वह प्रतिदिन तुम्हारे संदूकों में से रुपये निकाल निकाल कर तुम्हें बिलकुल कंगाल कर दे, और मैं चुपचाप देखा करूँ ? तुम ही कहो, मुझसे कैसे देखा जा सकता है कि वह अपव्यय के लिए सब समय दिल खोलकर ख़ज़ानों में से रुपये उधार ले जाये, और इतना ले, इतना ले, इतना ले कि ख़ज़ानों के चूहे भी भूखे मरने लगें ? ऐसी अवस्था में क्या तुम समझ सकते हो कि जिस व्यक्ति को तुम्हारे रुपये की आवश्यकता हो वह तुम्हारे उपदेश पर चलेगा ?—हाँ, वही तो तुम्हारा उपदेश मानेगा—अवश्य ! हमारा सलाहुद्दीन भला कभी किसी का उपदेश सुना करता है ? जानते हो, नातन, आज मैंने सुलतान को क्या करते देखा है ?—बताओ।

नातन—हाँ, क्या देखा ?

हाफ़ी—आज जब मैं उसके यहाँ गया तो वह उस समय बैठा हुआ सित्ता के साथ शतरंज खेल रहा था। सित्ता शतरंज खूब खेलती है। सलाहुद्दीन ने यह समझा

कि मुझे मात हो गई, और समझा क्या ? उसने खेल शेष ही कर दिया। परन्तु बिसात मेरे पहुँचने तक योंही बिछी थी। मैंने जो उसे ध्यान से देखा, तो मालूम हुआ कि अभी खेल शेष नहीं हुआ—

नातन—अहा ! तुम तो बड़े प्रसन्न हुए होगे कि बड़ी चीज़ हाथ आई।

हाफ़ी—हाँ, बस इतनी कमी थी कि यदि सुलतान अपने "शाह" को आगे बढ़ाकर "प्यादे" के पास ले आता तो सहज ही "शाह" रुक सकती थी—अरे, वह तो इतनी साफ़ चाल थी। लाओ, अभी चित्र बनाकर दिखा दूं ?

नातन—नहीं, मुझे इसमें कुछ संदेह नहीं, अवश्य होगी।

हाफ़ी—अच्छा, और क्या—"रुख़" से रास्ता रोक कर सित्ता को मात दी जा सकती थी।—अच्छा, मैंने सुलतान को समझाया कि ऐसी ऐसी चाल पड़ रही है, और मैंने उससे कहा कि—सोचिए तो।

नातन—और संभवतः उसने तुम्हारा कहना नहीं माना ?

हाफ़ी—कहना माना—खूब ! मानना कैसा ? मेरी बात तक तो सुनी नहीं, और क्रुद्ध होकर उठा कर बिसात पटक दी ।

नातन—सचमुच ?

हाफ़ी—और बड़े जोर से कहा कि हारना ही चाहता हूँ । यह लीजिए—हारना चाहता हूँ की खूब रही ! भला यह भी कोई शतरंज खेलना हुआ ?

नातन—वाह रे शतरंज ! यह बाजी क्या हुई खिलवाड़ हो गई !

हाफ़ी—और शर्त भी यह नहीं कि एक क्षुद्र सी कौड़ी ही की हो ।

नातन—अरे मियाँ ! धिक्कार है शर्त पर । शर्त चीज़ ही क्या है ? परन्तु तुम्हारे उपदेश पर ध्यान न देना—तुम्हारी बात न सुनना, और वह भी इतने बड़े विषय में, फिर तुम्हारी गरुड़ की सी आँखों की बात न मानना, यह बुरी बात है । इसका तो अवश्य बदला लेना चाहिए । क्यों ?

हाफ़ी—उँह ! मैंने तो यह घटना तुमको इसलिए सुना दी कि तुम उसके स्वभाव का अनुमान कर सको । तात्पर्य

यह है कि अब मेरी और उसकी किसी तरह नहीं बन सकती। यहाँ मैं इन मोटे ताज़े चिकने चुपड़े लोगों के यहाँ घूमते घूमते चक्कर लगाते लगाते घबरा गया कि कदाचित् इन भले मानसों में से कोई उस परमात्मा के जीव को रुपये उधार दे दे। और तुम जानते हो, मैंने अपने लिए कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया। इन महाशय के कारण मुझे यह भी करना पड़ता है। अरे मियाँ! उधार लेने और भीख मांगने में कुछ भेद थोड़े ही है। इसी तरह उधार देना, और वह भी भरपूर ब्याज पर चोरी करने से कदापि कुछ ही अच्छा हो तो हो। बस, अब गंगा किनारे ही चलना चाहिए। वहाँ जो मेरे दाता होंगे उनके लिए न मांगने की आवश्यकता होगी, न देने की। बस, गंगा किनारे ही असली मनुष्य बसते हैं। हाँ, बस, गंगा किनारे। और मैं सच कहता हूँ, यहाँ के सब रहनेवालों में केवल तुम ही एक ऐसे हो जो वहाँ जाकर बसने के उपयुक्त हो। चलो, मेरे साथ चले चलो—यह अपना रुपया भी छोड़ दो और सुलतान को भी दूर से सलाम करो। और वह तुमसे चाहता ही क्या है? बस यही चमकती हुई टिकलियाँ—और क्या? और देख लेना

वह अंत में तुमसे लेकर रहेगा। इससे यही अच्छा है कि इस झगड़े का अंत ही कर दो, इस पाप को दूर करो। मैं तुम्हें हाजी का चोग़ा दे दूँगा। आओ, चलो चलें यहाँ से।

नातन—नहीं, हाफ़ी। ऐसी क्या जल्दी पड़ी है? जब चाहेंगे चले जायँगे। यह तो सदा हो सकता है। तो ज़रा धैर्य धारण करो, मैं इतने में इस विषय पर सोच लूँ।

हाफ़ी—ऐं, सोचना कैसा? ऐसी बातों में सोचना ही क्या?

नातन—अच्छा, इतनी देर तो दम लो कि मैं ज़रा सुलतान के यहाँ से हो आऊँ, और उसे अंतिम सलाम करता आऊँ।

हाफ़ी—जो इस तरह दम लिया करता है वह सचमुच टालने के लिए बहाने निकालता है। जो एक दम से इस बात का निश्चय नहीं कर सकता कि बस अब मैं स्वतंत्र होकर रहूँगा वह सदा दूसरों का दास बना रहता है। जो तुम्हारा जी चाहे करो, भाई। लो, हमारा तो सलाम है—बंदगी! मेरा रास्ता यह है और तुम्हारा वह।

नातन—परंतु, हाफ़ी, जाने से पहले खज़ाने का हिसाब किताब तो तुम्हें ठीक करना पड़ेगा।

हाफ़ी—अहा हा! क्या कहने हैं हिसाब किताब के! मेरे संदूक़ में जितना रुपया बचा पड़ा है गिनने योग्य ही नहीं। रहा हिसाब, सो उसके ज़ामिन सिक्ता और तुम हो। सलाम! [चला जाता है]

नातन—[हाफ़ी को जाते हुए देखकर] हाँ, निस्संदेह! बड़ा अक्खड़—परंतु बहुत ही सज्जन है।—अरे हाफ़ी, अब और क्या कहूँ—सच्चा साधु ही असली बादशाह है।

[नातन भी दूसरी तरफ़ चल देता है।]

तीसरा अंक।

पहला दृश्य।

नातन का घर, रीशा और दाया।

रीशा—दाया, पिताजी ने यह कहा था कि वह किसी समय की मुहूर्त्त में आ पहुँचेगा। इसका यही अर्थ हुआ न कि बहुत जल्द आयेगा ? एक क्या, इतने सारे मुहुर्त्त यों ही बीत गये। परंतु हाँ ! मैं जो भूठ को भी बीते हुए मुहूर्त्तों का ख्याल करके अपना दिल थोड़ा किये जा रही हूँ, इससे तो यही अच्छा है कि अपने जी को प्रत्येक आगामी मुहूर्त्त में लगा दूं, आखिर कभी न कभी तो उसके आने का मुहूर्त्त भी आही जायेगा—क्यों ?

दाया—सत्यानाश हो सुलतान के ऐसे बुलावे का ! इसी से तो सारी देर हो रही है, नहीं तो नातन अब तक उसे बुला लाये होते।

रीशा—अच्छा, जब वह मुहूर्त्त आ पहुँचेगा और मेरे हृदय की आकांक्षा पूरी हो जायेगी, तब क्या होगा ?

दाया—तब ?—तुम्हारी आकांक्षा तो पूरी होगी ही, मेरी भी तो हार्दिक अभिलाषा पूरी होगी।

रीशा—परंतु जब मेरी अभिलाषा पूरी हो जायेगी, तो और कौन सी चीज़ हृदय में उसकी जगह लेगी ? मेरे इस बेचैन हृदय को आकांक्षा की कुछ ऐसी चाट पड़ गई है कि जब यह आकांक्षा पूरी हो जायेगी तो कदापि वह किसी और इच्छा को अपने अंदर जगह न देगा। आखिर क्या होगा दिल में ? क्या कुछ भी न होगा ? मैं तो इस ख्याल ही से काँपी जाती हूँ।

दाया—नहीं, फिर यह होगा कि तुम्हारी आकांक्षा की जगह मेरी आकांक्षा तुम्हारे हृदयमें घर करेगी।—मेरी बड़ी पुरानी अभिलाषा है कि तुम चल कर यूरोप में रहो। और ऐसे लोगों के साथ रहो जो तुम्हारे उपयुक्त हों।

रीशा—नहीं, दाया, तुम भूल कर रही हो। जिस कारण तुम अपनी इस इच्छा को कलेजे से लगाये फिरती हो वही ऐसी है कि तुम्हारी इस इच्छा को मेरा नहीं बनने देती। तुम्हारी जन्मभूमि तुम्हें खींच २ कर बुलाती है, तो क्या तुम यह समझती हो कि मेरी जन्मभूमि मुझे

अपनी ओर नहीं खींचती ? तुम्हारी याद में तुम्हारे आत्मीय स्वजनों का जो धुंधला सा चित्र रह गया है, उसको याद कर करके तो तुम इतनी तड़पी जा रही हो; और तुमने यह सोचा कि मेरे जो आत्मीयजन यहाँ हैं और जिन्हें मैं प्रति दिन देखती भालती हूँ, जिन की बातें सुनती हूँ, जिनके साथ मेरा उठना बैठना है, मेरा हृदय उन के लिए नहीं तड़पेगा ?

दाया—ना बेटी, तुम चाहे जो कुछ कहो, परमात्मा की बातें परमात्मा ही जाने। लो, भला अब किसी को क्या खबर है जो तुम्हारे इस बचानेवाले को उस परमात्मा ने जिसके लिए वह अपनी जान लड़ाता है, इसी लिए यहाँ भेजा हो कि तुम उसी के हाथों ऐसी जगह और ऐसे लोगों में पहुँचो जिनमें तुम्हें अपना जीवन व्यतीत करना है ?

रीशा—मेरी प्यारी दाया, तुम आख़िर कब तक ऐसी बातें बनाया करोगी ? तुम्हारे दिल में न जाने क्या २ उल्टी पुल्टी बातें भरी हुई हैं। लो, और सुनो, उसका परमेश्वर ! जिसके लिए वह जान लड़ाता है !—वाह क्या ख़ूब ! भला परमेश्वर भी किसी का बंधुआ है ? न जाने वह कैसा

परमेश्वर है जिसे कोई यह कह सके कि बस मेरा ही है, और किसी का नहीं। और क्या उसे किसी भक्त विशेष की भी आवश्यकता है कि उसका फौजदार बना फिरे? और यह तो स्पष्ट है कि जहाँ जिसका नाल गड़ा हो वहीं का रहना उसके भाग्य में लिखा होता है। जो यह नहीं, तो कैसे मालूम हो कि पृथ्वी में वह कौन सा विशेष स्थान है जहाँ हमें रहना बसना होगा। धिक्! धिक्! जो पिताजी तुम्हें यह कहते सुन लेते तो कितना क्रुद्ध होते! अच्छा, मैं तुम्हें धर्म की दुहाई देती हूँ, तुम ही कहो उन बेचारों ने तुम्हारा क्या लिया है जो तुम सदा झूठ ही यह कहा करती हो कि मेरी इच्छा यही है कि मैं उनसे दूर रहूँ? उन्होंने आखिर तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो तुम सदा चेष्टा कर कर के अपने न जाने कैसे २ फूल पत्ते और घास फूस ला ला कर बुद्धि के उन बीजों में मिला दिया करती हो जो पिताजी ने मेरी आत्मा में बो दिये हैं। प्यारी दाया, यह न समझना कि वह तुम्हारी रंग बिरंगी कलियों को मेरे हृदय की पृथ्वी में आनंदपूर्वक खिलने देंगे। और हाँ, यह भी सुन रखो कि तुम जिस २ तरह चाहो उन्हें मेरे हृदय में लगा देखो, यह अभागे इस स्थल

का रस चूस कर उसे भी मुर्दा करके छोड़ेंगे। इनकी इस गंध ही से मेरे होश उड़े जाते हैं, सिर फिरा जाता है। तुम्हारा सिर, न जाने, कैसा है कि तुम बड़े आनन्द से इस को उसमें भरे फिरती हो। मैं यह नहीं कहती कि तुम्हारे रग पुट्ठे ऐसे कठिन पत्थर से क्यों हैं कि तुम उनको सहार लेती हो। मैं तो बस इतना कहती हूँ कि मुझसे तुम्हारी यह बातें नहीं सही जातीं। और हाँ, वह तुम्हारा फ़रिश्ता !—ऐ ज़रा मेरी मूर्खता देखो, मैं किस मज़े से तुम्हारा विश्वास कर बैठी थी। अब भी जो कभी पिताजी के संमुख होती हूँ तो इस धृष्टता को याद करके मारे लज्जा के पसीना २ हो जाती हूँ।

दाया—धृष्टता !—वाह रे लड़की! जैसे सारी बुद्धि परमात्मा ने बस तुम ही में तो भर दी है। अब क्या कहूँ—क्या अच्छा होता जो मैं पूरी बात कह सकती !

रीशा—तो तुम्हें कहने से रोकता ही कौन है ? क्यों नहीं कह डालती हो ? अच्छा, मैं तुमसे यह पूछती हूँ कि जब तुम अपने धर्म के वीरों की प्रशंसा किया करती हो तो क्या कभी ऐसा भी हुआ है कि मैंने उन बातों को जी लगाकर न सुना हो ? या कभी ऐसा भी हुआ है कि मैंने

उनके कष्टों का हाल सुन कर आँसू न बहाये हों ? इतना अवश्य है कि यह कभी मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसे २ वीर होते हुए उन्होंने अपना ऐसा धर्म क्यों रक्खा। परंतु मेरे हृदय को इस विचार से और भी संतोष होता है कि परमात्मा की सच्ची सेवा यह नहीं है कि हम उस के स्वभाव और गुणों के विषय में तरह २ के विचार पका लिया करें। मेरे पिताजी ने कितनी बार यह बात मुझे समझाई है, और स्वयं तुमने भी बहुधा इसे ठीक माना है। प्यारी दाया, फिर यह क्या बात है कि जो मंदिर स्वयं तुमने उनके साथ मिलकर मेरे हृदय में बनाया है अब तुम उसे खोदकर फेक देना चाहती हो ?— परन्तु दाया, हमें अपने प्रियतम की प्रतीक्षा की घड़ियों को ऐसी बातों में बिताना उचित नहीं। मेरे लिए तो खैर ठीक है, क्यों कि मेरे लिए तो यह बड़ी बात है, परन्तु न जाने वह भी—वह देखो; दाया! कोई द्वार की ओर आ रहा है। यह तो परमात्मा करे वही हो!

———

दूसरा दृश्य।

रीशा, दाया और टेंपलर।

एक नौकर—[टेंपलर को अंदर लाते हुऐ] यों आइए, नाइट महाशय !

रीशा—अहा ! यह तो वही हैं, मेरे प्राण बचाने-वाले !

[ऐसा प्रतीत होता है कि वह अत्यंत घबराहट की अवस्था में मानों टेंपलर के पैरों पर गिर ही पड़ेगी।]

टेंपलर—इसी दृश्य से बचने के लिए तो मैं इतनी देर में आया। अच्छा फिर भी—

रीशा—मैं तो बस यह चाहती हूँ कि मैं इस स्वतंत्र व्यक्ति के पैरों पर गिरकर मनुष्य को धन्यवाद नहीं, वरन् अपने परमात्मा ही को धन्यवाद दूँ। इस व्यक्ति को तो धन्यवाद की इच्छा है नहीं, जैसे उस घड़े को धन्यवाद की आवश्यकता न थी जो आग बुझाने में इतना काम आया। वह बेचारा सेवा के लिए उपस्थित था कि जिस का जी चाहे उसे भरे, जिसका जी चाहे खाली करे। उसमें कोई भाव थोड़े ही था। बस, यही हाल इस व्यक्ति का

है। वह तो यों ही दैवात् आग की लपटों में घुस गया था और मैं अकस्मात् उसके हाथों में पहुँच गई थी। और यह भी दैवयोग ही था कि जिस प्रकार उसके चोगे पर आग की चिंगारियाँ जगह २ पड़ी थीं, उसी प्रकार मैं भी उसके हाथों में पड़ी रही, यहाँ तक कि फिर न जाने किसने और किस प्रकार हम दोनों को आग में से ढकेल कर बाहर निकाल दिया। फिर अब इसमें धन्यवाद ही की क्या बात है ? यूरोप में तो लोग मद्य से उन्मत्त होकर बहुधा इससे भी बड़े २ काम कर डालते हैं। विशेषतः टैंपलर लोगों का तो यह कर्तव्य ही है। हाँ, निस्संदेह उनका कर्त्तव्य है कि सिखाये हुए कुत्तों की तरह आग हो या पानी सब जगह घुस जाया करें और वस्तुएँ निकाल कर ले आया करें।

टैंपलर—[रीशा के वचन को आश्चर्य और बेचैनी से सुनते हुए]। दाया, दाया ! यदि कभी किसी कष्ट के समय चिंता उद्वेग और उलझन में मेरे मुँह से कोई अकृतज्ञता की बात बेसोचे समझे निकल गई हो, तो क्या तुम्हें यह उचित था कि वह सब बातें रीशा से कह दो ? दाया, यह तो तुमने जैसे मुझसे कोई बड़ी पुरानी शत्रुता का बिदला लया।

अच्छा, अब आगे से इतना करो कि जब इससे मेरी बातें करने लगो तो कृपापूर्वक मेरा तात्पर्य कुछ नम्र शब्दों में ऐसे समझाया करो—

दाया—मैं तो यही कहूँगी कि इसके हृदय से निकलने वाले इन छोटे छोटे अस्त्रों से आपको तो कुछ क्षति नहीं पहुँची ?

रीशा—क्या कहा ? आप चिंताओं में घिरे रहते हैं ? आप अपने जीवन के प्रति तो ऐसे निरपेक्ष हैं, परंतु घबराहट प्रकट करने में आप इतनी कृपणता से काम लेते हैं।

टेंपलर—कैसी अच्छी लड़की है ! मेरा आधा जी इस समय कानों में और आधा आँखों में है—क्या सचमुच यह वही लड़की है ? नहीं, नहीं। यह वह लड़की होही नहीं सकती जिसे मैंने आग से बचाया था। भला, यह कैसे हो सकता है कि कोई ऐसी साक्षात् जादू की लड़की को देखे और उसको आग की लपटों से न निकाल लाये ? भला, किस को हिचकिचाहट हो सकता था ? हाँ, अवश्य—डर के मारे रूप बदल भी जाता है। [वह रुक कर उसके मुख देखने में मग्न हो जाता है।]

रीशा—परंतु मुझे तो आप वही दिखाई दे रहे हैं जो उस समय थे। [टेंपलर उसी प्रकार ध्याननिमग्न है। अंत में रीशा मानो उसे इस स्वप्न से होशियार करने के लिए उच्च स्वर से कहती है।] हाँ, तो नाइट महाशय, यह बताइए कि आप इतनी देर कहाँ रहे ? वरन् मैं तो यह भी पूछना चाहती हूँ कि अब आप कहाँ हैं ?

टेंपलर—मैं कदाचित् वहाँ हूँ जहाँ मुझे नहीं होना चाहिए।

रीशा—और कदाचित् आप वहाँ रहे जहाँ आपको नहीं रहना चाहिए था। यह तो कुछ ठीक नहीं है।

टेंपलर—मैं उस पहाड़ पर था, क्या नाम है—तूर ? हाँ, लोग उसे यही तो कहते हैं।

रीशा—अच्छा, तो आप कोहतूर पर थे ? यह सुनकर मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ। अब मुझे ठीक २ मालूम हो सकेगा कि यह बात कहाँ तक ठीक है कि—[कुछ सोचने लगती है।]

टेंपलर—हाँ, क्या बात ठीक है ?—कि कदाचित् अब भी वह जगह दिखाई पड़ती है जहाँ ज्योति दिखाई दी थी और महात्मा मूसा ने परमेश्वर को अपने सामने देखा था ?

रीशा—नहीं, यह बात नहीं, कारण वह जहाँ कहीं भी खड़े हुए होंगे अपने परमेश्वर ही के संमुख होंगे, इसका तो मुझे विश्वास है। नहीं, वरन् मैं यह मालूम करना चाहती थी कि क्या यह सच है कि उस पहाड़ पर चढ़ना इतना कठिन नहीं है जितना उतरना कठिन है? देखिए न, मैं बहुत से पहाड़ों पर चढ़ चुकी हूँ और मैंने बिलकुल उसका उल्टा पाया है। परन्तु नाइट महाशय, आप उधर क्यों मुड़े जाते हैं, मेरी ओर क्यों नहीं देखते?

टेंपलर—यह इसलिए कि मैं आपकी बातें सुनना चाहता हूँ!

रीशा—जी नहीं, वरन् कदाचित् यह कारण है कि आपको मेरी मूर्खता की बातों पर हँसी आती है, और आप मुझसे छिपाना चाहते हैं। आप कदाचित् इसलिए मुसकुरा रहे हैं कि मैंने आपसे ऐसे पवित्र पहाड़ के संबंध में और कोई बड़ी बात क्यों न पूछी। क्यों? मैं ठीक कह रही हूँ न?

टेंपलर—यह बात है तो मुझे फिर आपकी आँखों ही की ओर देखना पड़ेगा। आप अपनी निगाह क्यों नीची किये लेती हैं? यह मुसकुराहट क्यों छिपाई जा रही है?

जो बातें आपकी निगाहों से टपक रही हैं आप उन्हें क्यों छिपाना चाहती हैं ? मैं तो आपके चेहरे से उनकी सचाई जानना चाहता हूँ। अहा रीशा, रीशा ! नातन ने मुझसे सच कहा था कि क्या अच्छा होता जो तुम इस लड़की को जानते होते !

रीशा—आपसे यह किसने कहा और किस के विषय में कहा ?

टेंपलर—आपके पिताजी ही ने कहा था, क्या अच्छा होता जो तुम उसे जानते होते ! और आपही के विषय में कहा था।

दाया—यही तो मैं भी बहुधा कहा करती थी।

टेंपलर—परंतु यह बताइए कि आपके पिताजी हैं कहाँ ? क्या अभी तक सलाहुद्दीन ही के यहाँ अकेले में बातचीत हो रही है ?

रीशा—हाँ, और क्या ?

टेंपलर—क्या ! अब तक वहीं हैं ? लो, मैं तो भूल ही गया था। नहीं, अब वह वहाँ नहीं हो सकते। वह अवश्य उधर मठ के पास मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। हाँ, यही तो मेरी उनसे प्रतिज्ञा थी। क्षमा कीजिए, मैं उन्हें लेने जाता हूँ।

दाया—नहीं, आप यह काम मेरे ऊपर छोड़ दीजिए। नाइट महाशय, आप यहीं ठहरिए। मैं उन्हें अभी लिए आती हूँ।

टेंपलर—नहीं, यह नहीं हो सकता। वह वहाँ मेरी प्रतीक्षा में हैं, तुम्हारी प्रतीक्षा में तो हैं नहीं। इसके अतिरिक्त कहीं ऐसा न हो कि—परन्तु क्या कहा जा सकता है—कहीं ऐसा न हो कि सलाहुद्दीन के यहाँ—तुम लोग सुलतान को नहीं जानतीं—वह विपद् में फँस गये हों। निश्चय जानो, कुछ न कुछ डर की बात अवश्य है। फिर मैं क्यों न शीघ्र उनके पास पहुँचूँ ?

रीशा—डर ! कैसा डर ?

टेंपलर—डर, केवल उन्हीं के लिए नहीं, वरन् तुम्हारे लिए भी और मेरे लिए भी। बस, अब मुझे शीघ्रता से उनके पास पहुँचना चाहिए।

[चला जाता है।]

———

तीसरा दृश्य।

रीशा और दाया

रीशा—दाया, आख़िर यह हुआ क्या? एक दम से—एकबारगी! आख़िर यह क्या हुआ कि यों चल खड़े हुए?

दाया—जाने भी दो। मेरे विचार में तो शगुन कुछ बुरा नहीं है।

रीशा—शगुन?—किस बात का?

दाया—इसका कि कुछ न कुछ अंदर ही अंदर हो रहा है। उसके रक्त में कुछ जोश सा पैदा हो गया है—और उसे डर है कि कहीं यह जोश बहुत ज़्यादा न हो जाये। बस, उसे उसके हाल पर छोड़ दो—जान पड़ता है अब तुम्हारी बारी है।

रीशा—मेरी बारी? क्यों दाया, मेरे लिए तुम भी उसी की तरह साक्षात् पहेली बनी जा रही हो।

दाया—मेरा अर्थ यह है कि वह समय आ गया है कि उसने जो २ दुःख तुम्हें दिये हैं अब तुम उससे उनका बदला लो। परन्तु देखो, बुरी तरह बदला न लेना, ज़्यादा कष्ट न देना।

रीशा—कौन जाने क्या बक रही हो। तुमही अपनी बातों को समझ सकती हो।

दाया—परन्तु यह तो बताओ कि तुम्हारे हृदय को सांत्वना हुई कि नहीं?

रीशा—हाँ, क्यों नहीं। परमात्मा की कृपा!

दाया—तो बस अब स्पष्ट कह डालो कि उसके हृदय की शांति जो उठ गई है तो उससे तुम्हें आनन्द हो रहा है, और उस व्याकुलता से तुम्हारे हृदय में ठंढक पड़ गई है कि नहीं?

रीशा—ऐसा हो भी, तो मैं नहीं जानती। इतना मैं अवश्य मानती हूँ कि मुझे स्वयं इसका बहुत आश्चर्य है कि मेरे हृदय में यह एक प्रचंड आवेग सा उठा था वह इस प्रकार एक दमसे क्यों दब गया। उसकी निगाह से, उसकी बातों से, उसकी एक एक गति से, यह प्रतीत होता है कि जैसे—जैसे—

दाया—जैसे तुम्हारा जी भर गया हो। क्यों?

रीशा—नहीं, जी तो भला क्या भरता!

दाया—फिर भी स्वतंत्रता की वह बेचैनी न रही।

रीशा—तुम यों कहलाना चाहती हो तो अच्छा यों ही सही, बस ?

दाया—नहीं, मैं तो नहीं चाहती।

रीशा—तुम चाहे कुछ कहो, मुझे तो वह सदा ही प्यारा लगेगा—प्राण से भी अधिक प्यारा। हाँ, यह अवश्य ठीक है कि पहले की तरह अब न तो उसका नाम सुनते ही मेरी नाड़ी फड़कती है और न उसके ध्यान से दिल तड़पता है।—परन्तु इस बक बक से लाभ क्या है ? आओ, दाया, आओ। फिर वहीं खिड़की में चलें जहाँ से खजूरें दिखाई देती हैं।

दाया—फिर तो अवश्य यही बात है कि तुम्हारा जी अभी पूरी तरह नहीं भरा।

रीशा—नहीं, अब मैं फिर एक बार उन खजूर के पेड़ों को देखना चाहती हूँ, यह नहीं कि वहाँ जाकर उसे ढूँढूँगी।

दाया—तुम्हें फिर यह ठंढक का दौरा हुआ। अब देख लेना इसके बाद फिर बुखार चढ़ेगा।

रीशा—ठंढक कैसी ? आखिर इसमें क्या बुरी बात है कि जिस चीज को मैं ठंढे दिलसे देख सकती हूँ उसे देखकर अपना मन प्रसन्न कर लूँ ?

चौथा दृश्य।

सुलतान के महल में दरबारी कमरा।

सलाहुद्दीन और सित्ता।

सलाहुद्दीन—[एक नौकर से] वह यहूदी ज्यों ही आये यहाँ ले आओ। [सित्ता से] जान पड़ता है उसे यहाँ आने की कुछ जल्दी नहीं है।

सित्ता—कदाचित् वह उस समय वहाँ नहीं था, इस लिए नहीं मिला।

सलाहुद्दीन—बहन, बहन !

सित्ता—भाई, ऐसा जान पड़ता है जैसे आप युद्ध को जा रहे हैं।

सलाहुद्दीन—हाँ, क्यों नहीं ? और ऐसे अस्त्र लेकर जा रहा हूँ जिन्हें आज तक कभी नहीं चलाया। अब मुझे भेष बदलना, डर दिखाना, और जाल बिछाकर बैठना पड़ेगा। भला, तुम ही बताओ, पहले भी मुझसे कभी ऐसा हुआ है ? कभी मैंने ऐसा करना सीखा था ? परन्तु अब करना ही पड़ेगा। और किस लिए ? धन संपत्ति

की मछलियाँ पकड़ने के लिए, एक यहूदी से डरा धमका कर रुपये वसूल करने के लिए। आह! सलाहुद्दीन की अब यह हालत हो गई! वह ऐसी ऐसी नीच बातों पर उतर आया है! और यह सब केवल इसलिए कि एक छोटी सी, क्षुद्र वस्तु मिल जाये!

सित्ता—परन्तु क्षुद्र वस्तुएँ भी ऐसी होती हैं कि यदि उन्हें क्षुद्र समझते रहो तो वह एक दम से आकर दबा डालती हैं और पूरी तरह बदला लेती हैं।

सलाहुद्दीन—आह! यह सच है—और कोई आश्चर्य नहीं कि यह यहूदी सचमुच वैसा ही सज्जन और बुद्धिमान हो जैसा हाफ़ी उसे कहता है।

सित्ता—ऐसा ही है तो समझ लीजिए कि आपकी कठिनाइयों का अंत हो गया। एक सज्जन और बुद्धिमान यहूदी के लिए जाल की आवश्यकता नहीं है। वह तो किसी लोभी, कंजूस, और विश्वासघातक यहूदी के लिए चाहिए। यह बेचारा तो बिना जाल फंदे के ही हमारा है, और जब हम यह जानते हुए उसकी बातें सुनें और देखेंगे कि वह किस किस तरह इन फंदों को तोड़कर फेंक देता और कैसी सावधानी और चतुराई से अपने आपको

उस इन्द्रजाल से निकाल ले जाता है, तब तो और भी आनंद आयेगा।

सलाहुद्दीन—सच है। मुझे इस विचार ही से आनन्द होता है। अच्छा, देखो क्या होता है।

सित्ता—अब तो आप को चिंता न करनी चाहिए। यदि वह भी साधारण मनुष्यों की तरह का हो, यदि वह भी और यहूदियों की सी बातें करे, तब तो, भाईजान, आप को भी यह समझ लेना चाहिए कि वह भी आप को और सब मनुष्यों की तरह का मनुष्य ही समझता है, वरन् यदि आपने उसके साथ और भी ज्यादा भलाई की बातें कीं तो वह आप को मूर्ख समझेगा।

सलाहुद्दीन—तो क्या इसका यह अर्थ है कि मैं उसके साथ बुराई करूँ कि वह बुरा आदमी मुझे बुरा न समझे?

सित्ता—यदि आप की दृष्टि में जैसे के साथ तैसा बन जाना बुराई है तो निस्संदेह बुराई ही करना उचित है।

सलाहुद्दीन—स्त्री भी आश्चर्यजनक वस्तु है। वह अपनी प्रत्येक शब्द को न्यायसंगत प्रमाणित करने के लिए कोई न कोई बहाना अवश्य निकाल लेती है!

सित्ता—बहाने की भी .खूब कही !

सलाहुद्दीन—बहन, सच्ची बात है, मुझे तो डर ही मालूम हो रहा है कि यह सूक्ष्म उपाय मेरे नौसिखिये हाथों में आकर टूट न जाये। ऐसे काम करने के लिए तो बड़े चातुर्य और सफ़ाई की आवश्यकता है। अच्छा, यों ही सही—जैसा मुझसे नाचते बनेगा नाचूंगा, और यदि मुझ से न बन पड़ा, तो मुझे दुःख न होगा वरन् आनन्द होगा।

सित्ता—अब इतना भी आप अपने ऊपर अविश्वास न कीजिए। अच्छा, मैं इस बात की ज़ामिन होती हूँ कि आप इस काम को सहज ही में कर लेंगे यदि केवल आप करना चाहें। कैसे आश्चर्य की बात है कि आप जैसे पुरुष हम स्त्रियों को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि उनके सारे कार्य केवल तलवार की सहायता ही से पूरे होते हैं! असल बात यह है कि सिंह को चतुर लोमड़ी के साथ शिकार खेलते हुए लज्जा होती है—परंतु यह लज्जा भी कपट से नहीं है, वरन् लोमड़ी से है।

सलाहुद्दीन—परन्तु स्त्रियाँ भी तो यह चाहती हैं कि पुरुष गिरते २ स्त्रियों के पद को प्राप्त हों। अच्छा, सित्ता,

अब तुम जाओ। मैं समझता हूँ कि मुझे अपना पाठ ख़ूब याद है।

सित्ता—क्या ? मैं जाऊं ?

सलाहुद्दीन—परन्तु तुम यहाँ रह भी तो नहीं सकतीं।

सित्ता—अच्छा, यहाँ नहीं तो बराबर के कमरे में तो अवश्य रहूँगी।

सलाहुद्दीन—हमारी बातें सुनने को ? नहीं, बहन। जो तुम चाहती हो कि मैं सफल होऊँ, तो चली जाओ। जाओ भी, जाओ। वह देखो परदा हिल रहा है, उसे आ ही गया समझो। देखो, सावधान ! यहाँ कदापि न रहना। मैं देख रहा हूँ। [ज्योंही एक द्वार से सित्ता भीतर जाती है, दूसरी द्वार से नातन प्रवेश करता है। सलाहुद्दीन संभल कर बैठ जाता है।]

पाँचवाँ दृश्य ।

सलाहुद्दीन और नातन ।

सलाहुद्दीन—आओ, भई यहूदी ! जरा और इधर को आ जाओ—मेरे पास । डरो मत ।

नातन—डरें आप के दुश्मन !

सलाहुद्दीन—तुम्हारा नाम नातन है ?

नातन—जी हाँ ।

सलाहुद्दीन—बुद्धिमान नातन ?

नातन—जी नहीं ।

सलाहुद्दीन—अच्छा, तुम न कहो, लोग तो कहते ही हैं ।

नातन—लोग ? संभव है ।

सलाहुद्दीन—तो क्या तुम समझते हो कि मैं मनुष्यों की ज़बान को ऐसा निकृष्ट समझता हूँ ? बहुत दिनों से मेरी इच्छा थी कि मैं उसको देखूँ जिसे लोग बुद्धिमान कहते हैं ।

नातन—लोग यों ही हंसी उड़ाने के लिए कह दें तो क्या होता है ? उनके हिसाब बुद्धिमान का अर्थ चतुर है और चतुर भी वह है जो अपने लाभ को अच्छी तरह समझता हो।

सलाहुद्दीन—अर्थात् अपने सच्चे लाभ को—क्यों ?

नातन—जो ऐसा ही हो तो क्या कहना ! फिर तो आदमी जितना अधिक स्वार्थी हो उतना ही चतुर भी होगा। और इस हिसाब से बुद्धिमान और चतुर का एक ही अर्थ होगा।

सलाहुद्दीन—परन्तु तुम्हारी इन बातों से तो फिर वही बात प्रमाणित होती है जिस का तुम खंडन करना चाहते हो। मनुष्य का सच्चा लाभ, जो लोगों से गुप्त रहता है तुम पर खुला हुआ है। अथवा कम से कम इतना तो अवश्य है कि तुम उसे जानने की चेष्टा करते हो, और उस पर अच्छी तरह ध्यान भी कर चुके हो। इसी से तो मनुष्य की बुद्धि का प्रमाण मिलता है।

नातन—अपने आप को सब ही बुद्धिमान समझते हैं।

सलाहुद्दीन—बस, अब इस विनय को रहने दो—जिस व्यक्ति से यह आशा हो कि वह स्पष्ट बुद्धि की

बातें करेगा, यदि वह बार बार विनय करे, तो स्वभावतः कुछ घृणा सी होती है। [तय्यार होकर बैठ जाता है] अच्छा, अब काम की बात करनी चाहिए। परंतु देखो, भई यहूदी, जो बात करनी हो स्पष्ट करना, लगी लिपटी न रखना।

नातन—आप निश्चय जानें कि आपकी इस प्रकार सेवा करूँगा कि आगे भी आप मेरे गाहक बने रहें।

सलाहुद्दीन—वह कैसे ?

नातन—वह इस तरह कि मैं अपना सर्वोत्कृष्ट माल आप को अर्पण करूँगा, और वह भी बहुत ही उचित मूल्य पर।

सलाहुद्दीन—यह तुम किस चीज़ के विषय में कह रहे हो ? अपने माल के विषय में तो नहीं कह रहे हो ?— इसका मोल तोल करना होगा तो वह मेरी बहन करेंगी। [अपने दिल में] यदि सित्ता यहीं खड़ी है तो सुनकर प्रसन्न तो हो लेगी। [नातन से] परंतु मुझको तुम्हारे वाणिज्य से कुछ संबंध नहीं है।

नातन—तो कदाचित् आप मुझसे यह पूछते हैं कि मैंने अपनी यात्रा में आपके शत्रुओं की क्या २ चेष्टाएँ देखी हैं ? तो, महाशय, स्पष्ट बात तो यह है कि—

सलाहुद्दीन—मुझे इस विषय में तुम से कोई मतलब नहीं। इन बातों का मुझे अच्छा ज्ञान है।

नातन—तो फिर जैसी आज्ञा।

सलाहुद्दीन—वह तो कुछ और ही चीज़ है, और बड़ी दूर की चीज़ है, जिसके संबंध में मुझे तुम्हारी शिक्षा की आवश्यकता है। अच्छा तुम तो इतने बुद्धिमान हो मुझे यह बताओ कि तुम्हारे विचार में मनुष्य का कौन सा धर्म, कौन सा मत सब से अधिक सच्चा और अच्छा है?

नातन—महाशय, मैं यहूदी हूँ।

सलाहुद्दीन—और मैं मुसलमान हूँ। और हम दोनों के बीच में ईसाई लोग हैं। अच्छा, तो इन तीनों में से केवल एक धर्म सच्चा हो सकता है। तुम जैसा व्यक्ति ऐसे धर्म पर जम कर नहीं रह सकता जो उसे केवल जन्म से या दैवात् मिल गया हो, और यदि ऐसा व्यक्ति इस धर्म पर दृढ़ रहेगा भी, तो उससे पूरी २ सांत्वना न होगी। सब प्रमाणों और कारणों पर ध्यान कर लेने के बाद ही वह दृढ़ रहेगा। तो अब बताओ तुम्हारा क्या विचार है और क्यों है? मैं इस लिए और भी सुनना चाहता हूँ

कि मुझे स्वयं कभी इन बातों पर ध्यान देने का अवसर नहीं मिलता। मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम जो अपने मत पर दृढ़ हो, तो उसके लिए क्या प्रमाण है? स्पष्ट है कि यह बात-चीत गुप्त रहेगी। और यदि हो सका तो मैं तुम्हारा मत अवलंबन कर लूंगा—नातन, तुम चौंकते क्यों हो? मुझे इस तरह आश्चर्य की दृष्टि से क्यों देखते हो? संभव है कि अब से पहले किसी और सुलतान को ऐसा ख्याल न आया हो। परन्तु इस ख्याल को राह देना भी तो किसी सुलतान के मान के विरुद्ध नहीं है। हाँ, अब बोलो। अथवा यदि तुम्हें सोचने के लिए कुछ समय की आवश्यकता हो तो मैं तुम्हें समय भी देता हूँ। समझे?—[अपने दिल में] न जाने सित्ता भी सुन रही है कि नहीं। जरा चलूँ तो सही। देखूँ तो वह क्या कहती है कि मैं कहाँ तक अपने कर्त्तव्यपालन में सफल हो सका। [नातन से] अच्छा, नातन, अब तुम इस प्रश्न पर ध्यान करो। मैं अभी थोड़ी देर में आता हूँ।

[उसी कमरे में जाता है जहाँ सित्ता बैठी है।]

छठा दृश्य।

नातन अकेला।

नातन—वाह ! क्या मजे की बात है ! आख़िर यह बात क्या है ? वह चाहता क्या है ? मैं तो समझा था वह रुपये की खोज में है। परन्तु अब जाना कि वह सत्य की खोज में है। और वह भी नक़द और ख़रा, मानो सत्य भी कोई सिक्का है। यदि वह किसी पुराने सिक्के की खोज में होता तो तौला जा सकता, तब भी खैर एक बात थी। परन्तु वह तो नया सिक्का चाहता है जो अभी टकसाल से बना हुआ चला आता हो, और खन् से गिन दिया जा सके। न, यह नहीं हो सकता ! भला, सत्य भी कोई ऐसी वस्तु है कि उसे लोगों के दिल में इसी प्रकार भरा जा सके जिस प्रकार थैली में रुपये रखे जाते हैं ! अब बताओ यहूदी कौन है, वह या मैं ? परन्तु हाँ, कहीं ऐसा तो नहीं है कि उसे सचमुच सत्य की खोज न हो, वरन् केवल मेरे फँसाने के लिए यह जाल बनाया हो। परन्तु इतने बड़े आदमी के लिए यह छोटी सी बात है। बहुत ही छोटी ! बड़े आदमियों के लिए कौन सी बात छोटी होती है ? फिर

मज़ा यह कि उसने ऐसी सफ़ाई से और एक दम यह प्रश्न किया जैसे कोई बेधड़क किसी के घर में घुस जाये। जो मित्र बनकर आता है वह द्वार पर खटखटाता है, अनुमति की प्रतीक्षा करता है। मुझे बहुत सावधान होना चाहिए, परन्तु यह हो कैसे ? मैं इस समय कट्टर यहूदी तो बन सकता नहीं, और न यह हो सकता है कि बिल्कुल शुरू से यहूदी मत का वेष ही उतार दूं, क्योंकि यदि मैं यहूदी न बना तो वह यह न कहेगा कि तुम मुसलमान क्यों नहीं हो जाते ?—अहा ! अब सूझी—हाँ, बस यही उपाय ठीक है—कहानियों से केवल बच्चे ही नहीं बहला करते। अच्छा, आने दो उसे।

सातवाँ दृश्य ।

सलाहुद्दीन और नातन ।

सलाहुद्दीन—[दिल में] यहाँ तो मैदान साफ़ था । [नातन से] मैं समझता हूँ कि मैं बहुत जल्द लौट कर नहीं आया । तुम अब अवश्य कुछ सोच चुके होगे ।—हाँ, तो किस परिणाम पर पहुँचे ? जो कुछ कहना हो कह डालो । यहाँ कोई और सुननेवाला नहीं है ।

नातन—मैं तो चाहता हूँ कि सारी पृथ्वी हमारी बातें सुने ।

सलाहुद्दीन—तो नातन को अपनी बात का इतना पक्का विश्वास है ? ऐसे ही आदमी को तो मैं बुद्धिमान समझता हूँ—जो सत्य के प्रकट करने में कभी इधर उधर न करे, उसकी राह में अपनी किसी वस्तु को न छोड़े, और धन दौलत तो क्या, उसके लिए प्राण तक देने को तय्यार रहे ।

नातन—निस्संदेह ! जब आवश्यकता हो या जब उससे लाभ हो ।

सलाहुद्दीन—मैं समझता हूँ कि आज से मुझे इस बात का अधिकार हो जायगा कि मैं अपने आप को धर्म और समाज का सुधारक सलाहुद्दीन समझूं।

नातन—इसमें क्या संदेह है कि यह अत्यंत अच्छा और प्यारा नाम है। परन्तु, महाशय, मैं अपना विचार बयान करने से पहले एक छोटी सी कहानी कहने की अनुमति चाहता हूँ।

सलाहुद्दीन—हाँ, क्यों नहीं? मुझे सदा कहानियों से अनुराग है। हाँ, इतना अवश्य हो कि कोई अच्छी तरह बयान करे।

नातन—अच्छा, मैं अच्छी तरह तो क्या कह सकता हूँ!

सलाहुद्दीन—फिर वही तुम्हारा अभिमान चला, फिर वही बनावटी विनय!—अच्छा, कहो, कहो।

नातन—अच्छा, तो कहानी यह है कि अब से बहुत पहले अत्यंत प्राचीन काल में पूर्व देश में एक व्यक्ति था। उसके किसी मित्र ने एक अनमोल अंगूठी उसे उपहार में दी थी जिसमें पुलक का नगीना जड़ा हुआ था और उसमें बीसियों प्रकार के मनोहर रंग झलकते थे। उस नगीने का

एक स्वभाव यह था कि जो कोई पूरे विश्वास के साथ उस अंगूठी को पहन लेता था वह परमात्मा और जनता दोनों का प्रिय हो जाता था। इस लिए वह व्यक्ति उस अंगूठी को बहुत यत्न से रखता था, और किसी समय भी उंगली में से उतार कर नहीं रखता था, वरन् उसने यहाँ तक ठान रखा था कि वह अंगूठी सदा उसी के वंश में रहेगी। इस लिए मरते समय उसने उस अंगूठी को अपने प्रियतम पुत्र को देकर इच्छा प्रकट की कि वह भी इसी तरह मरते समय अपने प्रियतम पुत्र को देता जाये, और यह नियम बना दिया कि चाहे वंश में सब से अधिक वयोवृद्ध भी कोई हो किन्तु वही व्यक्ति कुल वंश का बड़ा समझा जाये जिसके पास वह अंगूठी हो। आप समझे ?

सलाहुद्दीन—हाँ, हाँ, फिर क्या हुआ ?

नातन—तात्पर्य यह है कि वह अंगूठी इसी तरह पिता से पुत्र को मिलती रही। अंत में एक पिता के तीन पुत्र हुए। तीनों अपने पिता के आज्ञाकारी थे और इसलिए पिता को भी तीनों बराबर २ प्रिय थे। जब कभी उनमें से कोई से दो पुत्र कहीं चले जाते थे और केवल एक ही पिता के पास रह जाता और उसका विश्वस्त हो जाता तो

पिता को यही ख़्याल होता था कि केवल वही पुत्र अंगूठी पाने का अधिकारी है परिणाम यह हुआ कि प्रिय पिता ने प्रत्येक पुत्र से अंगूठी देने को प्रतिज्ञा कर ली। बहुत सा समय योंही बीत गया। होते होते पिता की मृत्यु का समय आ गया। अंगूठी की चिन्ता करके उसे बड़ी घबराहट होती थी कि आख़िर किसे दूं किसे न दूँ। एक को देता हूँ, तो दूसरे दोनों से भी तो प्रतिज्ञा कर रखी है, उनको कैसा दुःख होगा? अंत में, महाशय, उसने यह उपाय निकाला कि एक बड़े होशियार सुनार को बुलाया, और उसे वह अंगूठी दिखाकर गुप्तरूप से कहा कि चाहे कितनी ही लागत आये तुम मुझे बिल्कुल ऐसीही दो और अंगूठियाँ बनाकर ला दो। तात्पर्य यह कि सुनार बिल्कुल वैसीही दो अंगूठियाँ और बना लाया। अब जो बाप उन अंगूठियों को देखता है तो स्वयं उसे भी भेद नहीं जान पड़ता कि असली कौन सी है और नक़ली कौन-सी। मृत्यु के समय उसने बड़े आनन्द से प्रत्येक पुत्र को अलग २ अपने पास बुलाया, और आशीर्वाद दे देकर प्रत्येक को एक २ अंगूठी दे दी, और मर गया। आप सुन रहे हैं न?

सलाहुद्दीन—[ऊब कर एक ओर को देखते हुए] हाँ, हाँ। खूब सुन रहा हूँ। बस, अब शेष करो किसी तरह।

नातन—बस, अब शेष ही समझिए। वह तो स्पष्ट ही है कि फिर क्या हुआ होगा। पिता की आँखें बंद होते ही प्रत्येक पुत्र अपनी २ अंगूठी के भरोसे अपने वंश का प्रमुख और बड़ा होने का अभिलाषी हुआ। फिर तो छान-बीन हुई, खूब ही तू-तू मैं-मैं हुई। बड़ा झगड़ा पड़ा, परंतु सब बेकार—क्योंकि यह किसी प्रकार मालूम ही नहीं हो सकता था कि असल अंगूठी कौन सी है—[ज़रा रुककर, सुलतान को ध्यान से देखते हुए] बिल्कुल उसी तरह हम भी इस समय यह निर्णय नहीं कर सकते कि सच्चा धर्म कौन सा है।

सलाहुद्दीन—नातन, तुमने मेरे सवाल का यह जवाब दिया है ?

नातन—जी नहीं, यह कहानी तो मैंने केवल उदाहरण-स्वरूप वर्णन की है। अब, महाशय ही बतायें कि मैं उन अंगूठियों में कैसे भेद कर सकता हूँ जिनको पिता ने जान बूझकर ऐसा बनवाया था कि उनमें भेद न हो सके।

सलाहुद्दीन—अंगूठियाँ ? खूब ! मैं ऐसी बातों से नहीं बहल सकता। मेरा विचार तो यह था कि मैंने जिन तीन

धर्मों का नाम लिया था उनमें भेद करना सहज है, क्योंकि उनके माननेवालों के वेष और खाने-पीने के ढंग तक में भेद है।

नातन—परन्तु उनके प्रमाणों में तो कोई मूल भेद नहीं है। यह सब लोग प्रमाण के लिए इतिहास को संमुख रखते हैं—चाहे वह इतिहास जबानी कहानियों के रूप में हो या लिखा हो। परन्तु इतिहास की नीव विश्वास और मत पर है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि विश्वास सब से ज्यादा किसका होना चाहिए? स्पष्ट है कि हम अपने ही धर्मवालों का विश्वास करेंगे, जिनका रक्त हमारी नसों में है, जिन्होंने बचपन से आज तक हमसे प्रेम किया है, जिन्होंने हमें कभी धोखा नहीं दिया—सिवा उन समयों के जब हमारे लिए कदाचित् सच्ची बात से धोखा ही ज्यादा लाभदायक था। आपको अपने पूर्वपुरुषों पर जितना विश्वास है मुझे भा तो अपने बाप-दादा पर उतना ही भरोसा है। क्या मैं आप से यह प्रार्थना कर कता हूँ कि आप मेरे पूर्वपुरुषों की बात को सत्य स्वीकार करके अपने बड़ों के वचन और विचार को भ्रांत समझें? अथवा, क्या आप मुझसे ऐसा कह सकते हैं? फिर यही बात ईसाइयों के साथ समझ लीजिए। अब बताइए क्या आज्ञा है?

सलाहुद्दीन—[दिल में] परमात्मा साक्षी है ! यह आदमी सच कहता है। अब मुझे चुपही रहना चाहिए।

नातन—अब मैं फिर अंगूठियों की कहानी की तरफ़ आता हूँ। तो, जैसा कि मैंने कहा था, पुत्रों में झगड़ा हो गया। सब ने एक दूसरे के विरुद्ध कचहरी में मुक़द्दमा दायर कर दिया। प्रत्येक ने न्यायाधीश के सामने यही कहा कि मुझे यह अंगूठी स्वयं पिता के हाथ से मिली है। और सच भी यही था। और वह भी इस तरह कि पिता ने मुझसे बहुत दिनों से प्रतिज्ञा कर रखी थी कि अँगूठी मुझही को दी जायेगी, और यह बात भी ठीक थी। प्रत्येक पुत्र यही कहता था कि पिता ने मुझे कदापि धोखा नहीं दिया, ऐसा प्रिय पिता ऐसा नहीं कर सकता और यद्यपि मुझे अच्छा नहीं प्रतीत होता कि मैं दूसरे भाइयों पर अभियोग लगाऊँ, परन्तु कहना यही पड़ता है कि वह दोनों अवश्य अपराधी हैं और आज मैं उनका भेद खोल कर उनसे बदला लेकर छोड़ूँगा।

सलाहुद्दीन—अच्छा, फिर न्यायाधीश ने क्या कहा? मैं सुनना चाहता हूँ कि तुम जज के मुँह से अब क्या कहलवाओगे।—हाँ, फिर ?

नातन—न्यायाधीश फैसला सुनाते हुए कहा कि तुम लोग जाओ, और अपने पिता को लाकर कचहरी में हाज़िर करो, नहीं तो मैं तुम्हारा मुक़द्दमा ख़ारिज करता हूँ। आख़िर तुम लोग क्या समझते हो कि मैं यहाँ बैठकर तुम्हारी यह पहेली सुलझाया करूँ? अथवा, कदाचित् तुम लोग प्रतीक्षा करते हो कि असली अँगूठी आपही अपने गुणकी साक्षी देगी। परन्तु ज़रा ठहरो।—तुम कहते हो कि असली अंगूठी में यह जादू है कि उसका पहननेवाला परमात्मा और उसकी सृष्टि का सबसे अधिक प्रिय हो जाता है। अब इसी पर विचार आकर ठहरता है कि नक़ली अँगूठियों में यह शक्ति नहीं हो सकती—तो अब बताओ कि तुम तीनों में से वह कौनसा व्यक्ति है जिसे शेष दोनों बहुत ज़्यादा प्रिय मानते हैं?—क्यों, उत्तर क्यों नहीं देते?—यह तो ऐसा जान पड़ता है कि तुम्हारी अँगूठियाँ अन्दर २ फल देती हैं, बाहर नहीं, क्योंकि तुममें से प्रत्येक व्यक्ति केवल अपनेही पर आसक्त जान पड़ता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि तुम तीनों को धोखा दिया गया है, और तुम स्वयं भी धोखेबाज़ हो, और तीनों अंगूठियाँ झूठी हैं।—संभवतः सच्ची बात यह है कि असली

अँगूठी गुम हो गई है, और इस बात को गुप्त रखने और उसकी जगह दूसरी तय्यार कर देने के लिए तुम्हारे पिता ने यह तीनों अँगूठियाँ बनवाई थीं।

सलाहुद्दीन—धन्य! धन्य!

नातन—इसके बाद न्यायाधीश ने कहा—"मैं तो विचार प्रकट कर चुका। परन्तु कदाचित् तुम लोगों को मेरा उपदेश मेरे विचार से अधिक नापसन्द होगा। ऐसा है तो अब तुम लोग जाओ। परन्तु मैं तुमको यह उपदेश देता हूँ कि इस समय मुक़द्दमे का जो रूप है उसे उसी प्रकार स्वीकार कर लो। यदि यह सचमुच ठीक है कि तुममें से प्रत्येक को तुम्हारे पिता ही ने अंगूठी दी है तो तुममें से प्रत्येक को यही समझना चाहिए कि उसी की अंगूठी सच्ची और असली है। सम्भव है तुम्हारे पिता ने यह काम इसी लिए किया हो कि उसके पुत्रों में आकर यह अनुचित पक्षपात शेष हो जाय कि केवल एक ही व्यक्ति को वह विशेष अंगूठी दी जाये। यह तो तुम अच्छी तरह विश्वास रखो कि उसे तुम सबसे प्रेम था और सबसे बराबर प्रेम था, और इसी कारण उसने यह पसन्द नहीं किया कि केवल एक पुत्र का पक्षपात करके शेष दोनों को दुःखित

करे। अब तुम लोगों को यह करना उचित है कि प्रेम में प्रत्येक दूसरे से बढ़ जाये। और वह प्रेम भी ऐसा हो कि उसमें किसी प्रकार स्वमत अथवा सांप्रदायिक मत का लेश भी न हो। तुम में से प्रत्येक को यह चेष्टा करनी चाहिए कि अपनी अँगूठी के गुणों को ठीक प्रमाणित करके दिखाये। प्रत्येक को उचित है कि वह सौजन्य, विनय, सहनशीलता और सच्ची उदारता से काम ले और परमात्मा की इच्छा पर दृढ़ रहे। और अब से बहुत दूर, कहीं सहस्रों वर्षों के बाद, जब तुम्हारी सन्तत फिर इस कचहरी के संमुख उपस्थित होकर किसी मुझसे अधिक बुद्धिमान न्यायाधीश के संमुख असली अँगूठी के गुणों की साक्षी देगी, तब वह न्यायाधीश अपना फैसला सुनायेगा। अच्छा, अब जाओ।"—तो, महाशय, उस पुण्यात्मा न्यायाधीश ने यह वक्तृता दी थी।

सलाहुद्दीन—अल्लाह! अल्लाह!

नातन—सुलतान सलाहुद्दीन! यदि वह अधिक बुद्धिमान् न्यायाधीश जिसके विषय में कहा गया है आप ही हों—

सलाहुद्दीन—[आगे बढ़कर, और नातन का हाथ पकड़

कर] नहीं, मैं तो धूल हूँ, एक अत्यंत क्षुद्र जीव हूँ। हा परमात्मन !

नातन—ऐं ! यह आपका क्या हाल है ?

सलाहुद्दीन—नहीं, नातन ! उस न्यायाधीश के आने के सहस्रों वर्ष अभी नहीं बीते, और न सलाहुद्दीन उस न्यायसिंहासन के उपयुक्त है। अच्छा, बस अब जाओ। परन्तु मुझसे मित्रता न छोड़ना।

नातन—तो आप मुझसे बस यही कहते थे, या कुछ और ?

सलाहुद्दीन—नहीं, और कुछ नहीं।

नातन—और कुछ भी नहीं ?

सलाहुद्दीन—नहीं, कुछ नहीं। परन्तु तुम क्यों पूछते हो ?

नातन—मैं इस आशा से उपस्थित हुआ था कि मुझे आपकी सेवा में एक विशेष आवेदन करने का अवसर मिल जायेगा।

सलाहुद्दीन—अवसर मिलने की क्या बात ? कहो, क्या चाहते हो ?

नातन—मैं अभी एक बड़े दूर की यात्रा से वापस आ रहा हूँ। इस बीच में मैंने अपने बहुत से ऋण

वापस लिये हैं, और अब मेरे पास बहुत से नक़द रुपये मौजूद हैं। अब फिर संकट का समय आ रहा है, और मेरी समझ में नहीं आता कि मैं अपने धन की रक्षा किस प्रकार करूँ। इस लिए मेरा विचार हुआ कि संभव है कि आप—इस कारण से कि जब युद्ध बिल्कुल द्वार पर आ खड़ा होता है तो रुपये की आवश्यकता होती ही है—कदाचित् आप मेरे धन में से कुछ काम में लायें।

सलाहुद्दीन—[नातन को ध्यान से देखते हुए] नातन, मैं यह नहीं पूछना चाहता कि तुम्हें हाफ़ी ने बताया है, या स्वयं तुमही को कुछ ऐसा संदेह हुआ है कि तुम अपनी इच्छा से अपने रुपये पेश कर रहे हो—

नातन—संदेह कैसा, महाशय ?

सलाहुद्दीन—नहीं, मैं इसी योग्य हूँ। नातन, मुझे क्षमा करना—अब छिपाने से क्या लाभ है ?—सच यों है कि मैं अभी इस बात पर आनेवाला था कि—

नातन—क्या आप भी मुझसे यही कहते थे ?

सलाहुद्दीन—हाँ, बस यही कहनेवाला था।

नातन—तब तो हम दोनों का काम बन गया। परन्तु, महाशय, यदि मैं आप को अपना सब रुपया न भेज

सकूँ तो इसका कारण वह युवक टेंपलर होगा। मेरा ख्याल है कि महाशय उससे परिचित हैं। मुझे उसका एक बड़ा ऋण चुकाना है।

सलाहुद्दीन—टेंपलर!—यह क्या? क्या तुम मेरे सब से बड़े शत्रुओं को भी अपने माल और धन से सहायता दोगे?

नातन—जी नहीं, मैं तो केवल उस टेंपलर की बात कह रहा हूँ जिसके महाशय ने प्राण बचाये हैं।

सलाहुद्दीन—अरे, यह तुमने मुझे क्या याद दिला दिया? हाँ, मैं तो उस युवक को बिल्कुल भूल ही गया था। नातन, तुम उसे जानते हो? बताओ, वह अब कहाँ है?

नातन—कदाचित् महाशय को यह मालूम नहीं है कि महाशय ने उस पर जो अनुग्रह की है, वह उसके द्वारा शुभफल के रूप में मुझ तक पहुँची है, और मेरी प्यारी बच्ची को अग्निशिखा में से निकालने के लिए उसने अपने इस नये जीवन को भी संकट में डाल दिया था।

सलाहुद्दीन—अच्छा! यह तो उसके वेष ही से जान पड़ता था कि वह बड़ा वीर युवक है। परमात्मा साक्षी है! यही मेरा असद भी करता जिससे वह स्वरूप में इतना

मिलता जुलता है। वह अब भी यहीं है क्या? यदि ऐसा है तो उसे सीधे यहाँ बुला लाओ। मैंने अपनी बहिन से अपने उस प्यारे भाई की इतनी बात की है कि यद्यपि वह उस भाई को बिल्कुल नहीं जानती, परन्तु मैं चाहता हूँ कि वह कम से कम उसके एक यथार्थ चित्र को तो देख ले। हाँ, उसे बुला लाओ, और जल्दी लाओ। देखते हो, एक पुण्य कार्य से, यद्यपि वह एक क्षणिक भाव ही का परिणाम हो, कितने और पुण्य कार्य हो सकते हैं। जाओ, उसे ले आओ।

नातन—जी हाँ, अवश्य—परन्तु हमारी दूसरी प्रतिज्ञा पक्की हो गई है न, महाशय? [जाता है]

सलाहुद्दीन—मुझे दुःख यह है कि मैंने अपनी बहिन को यह बातें नहीं सुनने दीं। अब मैं शीघ्र उसके पास चलूँ। परन्तु जितनी बातें हुई हैं, अब मैं उनका आधा भाग भी तो वर्णन नहीं कर सकूँगा। [चला जाता है।]

आठवाँ दृश्य।

संन्यासियों के मठों के पास, खजूरों के पेड़ों के नीचे टेंपलर नातन की प्रतीक्षा में है।

टेंपलर—[अत्यंत दुःख और घबराहट की अवस्था में] अब तो यह मेरा अभागा पीड़ित हृदय, फड़कते फड़कते थक कर रह गया—परन्तु नहीं, अब मैं इस पर ध्यान ही न दूँगा कि मेरे हृदय पर क्या क्या बीत रहा है, और न यह सोचूँगा कि भविष्य में क्या २ बीतने वाला है। बस, अब बहुत हो चुका। मैं वहाँ से व्यर्थ ही भाग आया—परन्तु न भागता तो और क्या करता?—अच्छा, जो हो चुका सो हो चुका। पहले, यह आक्रमण ही मुझ पर कुछ ऐसा यकायक हुआ कि हज़ार बचने की चेष्टा की परन्तु न बच सका। मैं कितने दिनों से इस बात को टाल रहा था, और मुझ को कुछ उसको देखने की ऐसी आकांक्षा भी न थी। परंतु वह देखना विपद् हो गया, और एक बार देखते ही फिर यह भी प्रतिज्ञा कर ली कि अब कभी इस रूप को अपनी आँखों से ओझल न होने दूँगा। परंतु यह प्रतिज्ञा करना कैसा? इसका अर्थ तो है चेष्टा और

कर्म। और मुझे सिवा तड़पने के और किसी चीज़ से संबंध नहीं।—क्या कहूँ! उसे देखते ही मुझे कुछ ऐसा मालूम हुआ कि जिससे मेरा अस्तित्व ही उसके व्यक्तित्व के साथ लीन हो गया है, और अब तक यही अवस्था है कि यह बात किसी प्रकार कल्पना में भी नहीं आती कि उससे अलग होकर जीवित कैसे रह सकता हूँ। यह तो जीवित होकर भी मृत ही होना है। और यहीं क्या, मैं तो मरकर भी जहाँ जाऊंगा वहाँ भी मेरे लिए मृत्यु ही मृत्यु है। क्या इसी को प्रेम कहते हैं? ऐं! कहीं टेंपलर भी आसक्त हुआ करते हैं? परमात्मा का भी डर चाहिए। एक ईसाई—और एक यहूदी लड़की से प्रेम करे!—परन्तु इसमें दोष ही क्या है?—इस पवित्र भूमि में जिस के गुणों को मैं कभी न भूलूंगा मैंने अपने बहुत से धार्मिक अंधविश्वासों को हटा दिया है। आखिर मेरा संघ मुझ से क्या आशा करता है? टेंपलर की अवस्था में तो मैं अब मृत हूँ—मैं उसी समय से मर चुका हूँ जब से सलाहुद्दीन के पंजे में गिरफ्तार होकर आया था। क्या सचमुच यह सिर जो सलाहुद्दीन ने मुझे दान किया है वही है जो पहले था? कदापि नहीं! यह तो कोई और ही सिर

है। इस सिर को तो उन सब बातों का होश ही नहीं जो मेरा पहला सिर देख सुन चुका था। और इसमें भी संदेह नहीं कि यह उस पुराने सिर से अच्छा है, और यह मेरे पिता के असली जन्मभूमि के अधिक अनुकूल है। हाँ,मेरा यह ख्याल अवश्य ठीक है—क्योंकि अब मेरे मन में भी वैसे ही भाव उदय हो रहे हैं जैसे इस देश में मेरे पिता के मन में उदय हुए होंगे। यह और बात है कि लोगों ने मुझे उनके संबंध में झूठ ही कहानियाँ गढ़ गढ़ कर सुनाई हों। परन्तु यदि वे कहानियाँ भी हैं तो भी मेरा हृदय साक्षी है कि वे बिल्कुल ठीक हैं। और विशेषकर अब तो मुझे उनका बिल्कुल निश्चय होता जाता है क्योंकि मैं बिलकुल उसी जगह लड़खड़ा रहा हूँ जहाँ मेरे पिता लड़खड़ा कर गिरे थे। अच्छा, वह गिरे ही सही। परन्तु लड़कों में मिलकर खड़े होने से तो यही अच्छा है कि मनुष्य युवक लोगों के साथ गिर पड़े। मेरे पिता की कार्यपद्धति इसका प्रमाण है कि मेरे पिता की दृष्टि में मेरा यह कार्य अवश्य प्रशंसनीय ठहरता। फिर मुझे औरों की प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता की आवश्यकता क्या है? अच्छा, नातन की प्रसन्नता? परन्तु, नहीं, उससे तो मुझे केवल प्रसन्नता ही नहीं वरन्

सहायता की भी आशा है। यह भी अजब यहूदी है और बिना कारण ही ऐसा पक्का यहूदी बनता है।—अरे वह तो बड़े जोरों से आ रहा है, और इतना प्रसन्न! ऐं! परंतु सलाहुद्दीन के यहाँ जो भी होकर आता है इसी प्रकार प्रसन्न आता है। नातन! नातन!

नवाँ दृश्य।

नातन और टेंपलर।

नातन—अहा, नाइट महाशय! आप हैं?

टेंपलर—आप सुलतान के यहाँ .खूब ठहरे।

नातन—नहीं, वहाँ तो अधिक विलंब नहीं हुआ, जाने ही में विलंब हो गया था। सच्ची बात यह है कि जैसी उसकी ख्याति सुनी थी वैसा ही पाया। नहीं, वरन् यों कहना चाहिए कि उसकी खयाति उसके व्यक्तित्व की एक धुंधली सी छाया है। परन्तु हाँ, पहले मुझे आप से यह कह देना चाहिए कि सुलतान आपसे—

टेंपलर—क्या चाहता है?

नातन—आप से बातें करना चाहता है। इसलिए आप तुरन्त उसके यहाँ जाइए। पहले आप ज़रा एक मुहूर्त्त के लिए घर तक चले चलिए। मुझे वहाँ सुलतान के लिए कुछ प्रबंध करना है। फिर वहाँ से सुलतान के यहाँ चलेंगे।

टेंपलर—अब तो मैं आप के घर उस समय तक पैर न रखूँगा जब तक—

नातन—यह क्यों ? जान पड़ता है आप वहाँ हो आये हैं। वरन् उससे मिले भी हैं और उससे बातचीत भी की है। अच्छा, अब बताइए कि आप रीशा को कैसा समझते हैं ?

टेंपलर—शब्दों में प्रकट करना कठिन है। अब रहा यह कि मैं फिर जाकर उससे मिलूं—यह तो मैं कदापि न करूँगा। नहीं, कदापि नहीं ! जब तक आप मुझ से अभी इसी स्थान पर यह न प्रतिज्ञा करें कि अब मुझे अनुमति होगी कि मैं उसे सब समय देखा करूँ।

नातन—आप का तात्पर्य क्या है ?

टेंपलर—[नातन के गले से लगकर] प्रिय पिता !

नातन—प्रिय युवक, यह क्या ?

टेंपलर—[गले से अलग होकर] मुझे पुत्र नहीं कहते आप ? ऐं !

नातन—मेरे प्रिय युवक !

टेंपलर—फिर पुत्र आपने नहीं कहा। नातन, आप को परमात्मा के बनाये हुए सनातन और दृढ़तम संबंध की दुहाई देता हूँ—इन सामयिक संबंधों को असली

संबंधों से श्रेष्ठतर न समझिए। इस समय आप यह समझिए कि आप मनुष्य हैं, शेष सब भूल जाइए।

नातन—प्रिय बन्धुवर !

टेंपलर—और पुत्र ? पुत्र नहीं ? हाय, अब भी नहीं ? —अब भी नहीं ? कि जब कृतज्ञता ने आपकी पुत्री के हृदय तक प्रेम के लिए एक रास्ता खोल दिया है ? अब भी नहीं, जब कि हम दोनों के भाव केवल आप की 'हाँ' की प्रतीक्षा में हैं कि मिलकर एक हो जायें ! आप अब भी चुप हैं ?

नातन—युवक टेंपलर,—तुमने तो मुझे आश्चर्य में डाल दिया।

टेंपलर—आश्चर्य में डाल दिया ? यही आश्चर्य न, कि मैंने आपके हृदय की बात कैसे कह दी ? अथवा संभव है कि मेरे मुँह से निकल रही है इसलिए आप उसे न समझ सके हों—यह आश्चर्य क्यों ?

नातन—परन्तु टपलर महाशय, मुझे अभी यह भी तो मालूम नहीं है कि आप इतना इश्ताउफेन वंश की किस शाखा से हैं।

टेंपलर—क्या कहा आप ने ? क्या ऐसे सुसमय में भी आप के हृदय में ऐसे २ व्यर्थ प्रश्न उठ रहे हैं ?

नातन—सुनिए तो—एक युग बीत गया कि जब इश्ताउफेन वंश के एक व्यक्ति से जान पहचान थी—उस का नाम था कौनरैड।

टेंपलर—अच्छा, यदि मेरे पिता का भी बिल्कुल यही नाम हो तो ?

नातन—क्या सचमुच यही नाम था ?

टेंपलर—उन ही के नाम पर तो मेरा नाम भी यह हुआ है, क्योंकि कुर्द और कौनरैड दोनों एक ही हैं।

नातन—अच्छा, तो मेरा कौनरैड तुम्हारा पिता नहीं हो सकता, क्योंकि मेरा कौनरैड भी तुम्हारी तरह एक टेंपलर था, और उसका विवाह कभी नहीं हुआ।

टेंपलर—फिर भी—

नातन—अर्थात् ?

टेंपलर—तब भी सम्भव है कि वही मेरा पिता हो।

नातन—अब तो तुम हंसी करने लगे !

टेंपलर—आप भी तो अत्यंत सावधानता से काम ले रहे हैं। अच्छा, मैं अपने बाप का औरस पुत्र न सही, परन्तु रक्त भी तो आख़िर कोई चीज़ है। अच्छा

यह है कि न आप मुझ से मेरा गोत्र पूछिए और न मैं आपके गोत्र से कोई संबंध रखूं। परन्तु ईश्वर न करे, इस से मेरी यह इच्छा नहीं है कि मुझे आपके गोत्र के ठीक होने में कोई संदेह है। यह तो मुझे निश्चय है कि आप उसे अत्यन्त सम्यक् रूप से होते २ हज़रत इब्राहीम से जा मिलावेंगे, और उससे ऊपर की यथार्थता पर तो मेरा विश्वास है, वरन् उसकी शपथ ले सकता हूँ।

नातन—तुम्हें क्रोध आ गया।—क्या मैं सचमुच इसी योग्य हूँ? क्या मैंने अब तक तुम्हारी किसी बात को मानने से अस्वीकार किया है? मैं तो केवल इस लिए छानबीन कर रहा हूँ कि तुमने जल्दी में बिना-सोचे समझे एक बात कह दी।

टेंपलर—बस, इतनी सी बात थी? अच्छा, तब तो मुझे क्षमा कीजिएगा।

नातन—अच्छा, तो मेरे साथ आओ।

टेंपलर—कहाँ? आपके घर? जी नहीं, यह तो न होगा। मुझे डर है कि कहीं फिर एक बार और आग न लग जाये—मैं यहीं आपकी प्रतीक्षा करूंगा। बस।

और यदि अब मैं उसे कभी देखूंगा भी तो इस प्रतिज्ञा पर कि मुझे यह अधिकार प्राप्त होगा कि स्वच्छंदता के साथ जब चाहूँ देखूं, नहीं तो यों तो मैं उसे अच्छी तरह देख ही चुका हूँ।

नातन—अच्छा, तो मैं जाता हूँ। [चला जाता है।]

दसवाँ दृश्य।

टेंपलर और कुछ देर के बाद दाया।

टेंपलर—[अभी तक अकेला] हाय ! अब नहीं रहा जाता। मनुष्य का मन भी कैसा विशाल है कि उसमें भावों का एक संसार का संसार आबाद रहता है। फिर भी बहुधा ऐसा होता है कि ज़रा सा नया भाव भी एक दम से सारे मस्तिष्क पर छा जाता है। फिर चाहे उससे पहले उस में कुछ ही भरा हो सब कुछ व्यर्थ हो जाता है। परन्तु हाँ, ज़रा धैर्य धारण किया जाये, तो इसी बेजोड़ और बेहंगम पदार्थ से एक ठीक और पूर्ण भाव उत्पन्न हो जाता है, वह सारा कुप्रबंध शेष हो जाता है, और फिर वही अगली सी परिपाटी और वही प्रबंध स्थिर हो जाता है। तो क्या सचमुच मैं प्रेम में फँसा हूँ ?—क्या इससे पहले मुझे कभी किसी से प्रेम नहीं हुआ ? अथवा यह बात होगी कि पहले मैंने जिसे प्रेम समझा था वह प्रेम नहीं था। तो क्या सच्चा प्रेम यही है जिसका मैं अभी अनुभव कर रहा हूँ ?

दाया—[चुपके से कहीं एक ओर से आ निकलती है।] नाइट महाशय ! नाइट महाशय !

टेंपलर—कौन ? दाया, तुम हो ?

दाया—मैं भी आते २ नातन से आँख बचाकर यहाँ पहुँची हूँ। परन्तु वह यहाँ हमें देख पायेगा इसलिए आप इधर मेरे पास आ जाइए—इधर इस पेड़ की आड़ में।

टेंपलर—आख़िर अब यह क्या होने वाला है ? यह रहस्य क्यों ?

दाया—हाँ, रहस्य की बात ही के लिए तो मैं आई हूँ, और वह भी एक नहीं, दो दो।—इनमें से एक तो मुझे मालूम है, और एक आप को। आइए, हम अपनी अपनी बातें एक दूसरे से बदल लें। आप अपनी बात मुझे बता दें, तो अपनी बात आप को बता दूंगी।

टेंपलर—हाँ, मैं प्रसन्नतापूर्वक बता दूँगा। परंतु कृपया पहले तुम बता दो कि मेरी यह क्या बात है ? परंतु अच्छा, वह तो अभी तुम्हारी ही बात से मालूम हो जायेगी। हाँ, तो पहले तुम बताओ।

दाया—ऐं ! पहले मैं ही बताऊँ ? नहीं, नाइट महाशय, यों नहीं। पहले आप बताइए, तब मैं बताऊँगी। और आप निश्चय जानें कि जब तक आप अपनी बात न कह देंगे उस समय तक मेरी बात के सुनने से कोई लाभ नहीं

हो सकता। परन्तु जल्दी कहिए। जो मैंने यों ही होते २ आप की बात का पता लगा लिया, तो आपके बताने की कोई बात न रहेगी और, और मेरी बात मेरे ही पास रह जायेगी—और आप मुँह देखते रह जायेंगे। और नाइट महाशय! यह तो पुरुषों की बस कल्पना ही कल्पना है कि वह स्त्री जाति से कोई बात छिपा सकते हैं।

टैंपलर—और जो वह स्वयं ही न जानते हों तो?—

दाया—सम्भव है ऐसा ही हो। तब तो कदाचित् मुझे यह चाहिए कि आपका भेद भी आप को बता दूं। परन्तु पहले आप यह तो बताइए कि उस दिन आप इस प्रकार एक दम से हमें देखते के देखते छोड़कर क्यों चले आये? और अब आप नातन के घर क्यों नहीं जाते? क्या रीशा ने आपके हृदय पर इतना कम प्रभाव डाला है? अथवा बहुत गहरा प्रभाव डाला है? है न यही बात? अरे, मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि चिड़िया लासे में फँस कर कैसे फड़फड़ाती है। बस, अब आप स्पष्ट कह डालिए कि आप को उससे प्रेम है—नहीं? वरन् आप उसके लिए उन्मत्त हैं।—जो आप यह स्वीकार कर लें, तो मैं आपको एक बात सुनाऊँ।

टेंपलर—मैं उन्मत्त हूँ ? हाँ, सच तो कहती हो। तुम इन बातों को अच्छी तरह समझती हो।

दाया—नहीं, यदि आप प्रेम स्वीकार कर लें, तो मैं उन्मत्त नहीं कहूँगी।

टेंपलर—दाया, यह भी कोई बुद्धि की बात है, भला ? तुमही कहो, कोई टेंपलर किसी यहूदी लड़की पर कैसे आसक्त हो सकता है ?

दाया—हाँ, मालूम तो ऐसाही होता है कि यह दुर्बुद्धि की बात है। परन्तु यह भी तो हो सकता है कि किसी चीज़ में हमारी समझ से भी अधिक अर्थ हो—और फिर यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हमारा पवित्र त्राण-कर्त्ता हमें ऐसे ऐसे रास्तों से अपने निकट बुलाये जो हमारे संसार के बड़े बड़े बुद्धिमानों को भी न सूझें।

टेंपलर—उफ़ रे समझ तेरी ! [दिल में] हाँ, यदि 'त्राणकर्त्ता' के स्थान पर 'परमात्मा की दी हुई बुद्धि' कहा जाये, तब तो यही कहना चाहिए कि यह ठीक कह रही है—दाया, मेरा स्वभाव नहीं कि मैं अपनी छान-बीन करूँ, परन्तु तुमने मुझे बहुत इच्छुक बना दिया।

दाया—परन्तु महाशय, यह भूमि भी तो अलौकिक कांडों की भूमि है।

टेंपलर—[दिल में] अच्छा—अलौकिक कांडों के क्या कहने हैं! भला, जहाँ सारी पृथ्वी उमडी चली आती हो वहाँ भी आश्चर्यवाली बातें न होंगी तो और कहाँ होंगी? [दाया से] अच्छा, दाया, तुम जिस बात की प्रतिज्ञा मुझसे लिया चाहती हो, समझ लो कि मैंने प्रतिज्ञा कर ली। हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे उस से प्रेम है—हाँ, निश्चय प्रेम है। और मेरी समझ में नहीं आता कि मैं उसके बिना कैसे जीवित रह सकता हूँ।

दाया—सचमुच? तो अब आप मुझसे शपथ करके प्रतिज्ञा कीजिए कि आप उसे अपना बना लेंगे। हाँ, शपथ कीजिए कि आप इस लोक ही में नहीं वरन् परलोक में भी उसे सदा के लिए इस जंजाल से निकाल लेंगे।

टेंपलर—परन्तु कैसे?—मैं कैसे?—किस प्रकार ऐसी बात की शपथ कर सकता हूँ जो मेरे वश की नहीं?

दाया—आप के वश की है, अवश्य है। और यदि नहीं भी है, तो मैं एक ही शब्द में बता दूँगी कि किस प्रकार आपके वश की हो सकती है।

टेंपलर—कदाचित तुम्हारा तात्पर्य यह है कि उसका पिता राज़ी है।

दाया—पिता का क्या इजारा है? उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

टेंपलर—अच्छी दाया, तुम यह "करना ही पड़ेगा" क्या कह रही हो? उसके सिर पर कोई लठ लिये थोड़े ही खड़ा है कि अवश्य स्वीकार करना ही पड़ेगा! भला कोई बात भी हो?

दाया—तब तो उसे स्वीकार करने के लिए तैय्यार होना पड़ेगा, और हंसी ख़ुशी ऐसा करना पड़ेगा।

टेंपलर—स्वीकार भी, और स्वीकार करना ही पड़ेगा भी! अच्छा, अब मैं तुम्हें बताता हूँ कि मैं उसका हृदय टटोल चुका हूँ—अब?

दाया—और उसने तुम्हारी बात न मानी?

टेंपलर—उसने एक ऐसी बात कही जिससे मुझे बड़ा ही दुःख हुआ।

दाया—यह आप क्या कह रहे हैं? होना तो यह चाहिए था कि आपके मुंह से रीशा के नाम का ज़रा सा

संकेत पाते ही वह मारे आनन्द के उछल पड़ता। फिर यह क्या उल्टी बात हुई कि उसने उल्टा व्यवहार किया और रोड़े अटकाने लगा ? मेरी समझ में नहीं आता।

टेंपलर—हाँ, परंतु हुआ यही।

दाया—तब तो मुझे जो कुछ भी करना है बेधड़क करूँगी। एक मुहूर्त्त भी दम न लूँगी ? [रुक जाती है।]

टेंपलर—कुछ न कुछ संदेह तो तुम्हें अवश्य मालूम होता है।

दाया—हाँ, यों तो वह हर तरह बहुत ही सज्जन है और मुझ पर उसके बहुत से अनुग्रह हैं, परन्तु आश्चर्य है कि उसने स्वीकार न किया। परमात्मा जाने, उसे बाध्य करते हुए मेरा दिल दुःखता है। परंतु क्या करूँ आख़िर ?

टेंपलर—परमात्मा की दुहाई ! दाया, बस, एक बात कहकर मेरे संदेह को दूर कर दो, अथवा यदि तुम्हें यह हिचकिचाहट हो कि जो कुछ तुम कहनेवाली हो वह सच है या झूठ है, या अच्छी बात है, या लज्जा की बात है, तो अच्छा है बिल्कुल चुप हो जाओ। और मैं भी इस बात को भुला दूंगा कि तुम्हारे पास कोई रहस्य भी था।

दाया—इससे तो मेरा उद्वेग और भी बढ़ता है। तो नाइट महाशय, अब मैं आप को बताये देती हूँ कि रीशा यहूदिन नहीं है, वरन् वह ईसाई लड़की है।

टेंपलर—[उदासीनता से] आखिर बात निकली, महाशय! दाया, मैं तुमको आशीर्वाद देता हूँ कि ख़ैर ख़ूबी से तुम्हारा यह गर्भ प्रसव हो गया। दर्दों ने तुम्हें बहुत ही कष्ट दिये होंगे। बहुत अच्छी बात है तुम अब पृथ्वी की जनसंख्या बढ़ाने से तो रहीं। बस, अब परमात्मा का नाम लेकर इसी प्रकार स्वर्ग की जनसंख्या बढ़ाये जाओ।

दाया—हमने तो ऐसी अच्छी बात बताई, और उसपर हमें यह ताने दिये जा रहे हैं! क्यों, महाशय? यह भी अच्छी बात है कि एक ईसाई आदमी, और वह भी टेंपलर, और फिर प्रेमी, यह सुनकर प्रसन्न न हो कि रीशा ईसाई है!

टेंपलर—हाँ, और विशेषकर यह समाचार सुनकर कि वह विशेष तुम्हारे हाथों ईसाई बनी है!

दाया—वाह! महाशय, वाह! आपने मेरी बात का अच्छा अर्थ निकाला! नहीं, यह बात कदापि नहीं—

वरन् मैं तो परमात्मा से प्रार्थना करती हूँ कि कोई परमात्मा का भक्त आकर उसका मत बदल दे। यह भी उस बेचारी के भाग्य की बात है कि यों कहने को तो इतने दिन से ईसाई है, फिर असल में अब तक न होने पाई।

टेंपलर—सुनो, या तो स्पष्ट कहो, या चल दो।

दाया—यह लड़की ईसाई थी, ईसाई माँ बाप की बच्ची थी, और बप्तिस्मा ले चुकी थी।

टेंपलर—[आग्रह के साथ] और नातन ?

दाया—वह उसका पिता थोड़े ही है ?

टेंपलर—क्या ! नातन उसका पिता नहीं है ? तुम समझती भी हो क्या कह रही हो ?

दाया—हाँ, हाँ, अच्छी तरह समझती हूँ कि जो कुछ कह रही हूँ ठीक कह रही हूँ।—हाय ! इस बात को सोच-सोच कर मेरा कलेजा कैसा कैसा करता है। नहीं, वह उसका पिता नहीं है।

टेंपलर—अच्छा, तो केवल लेकर पाल लिया है, और कह रखा है कि उसी की बच्ची है। आह ! एक ईसाई लड़की को यहूदी बनाकर पाला है !

दाया—हाँ, और नहीं तो क्या ?

टेंपलर—और उसे स्वयं भी ज्ञान नहीं कि उसने किस मत में जन्मग्रहण किया था? पिता ने भी नहीं बताया कि वह यहूदी नहीं, वरन् जन्म से ईसाई है। ऐं ?

दाया—कभी नहीं।

टेंपलर—न केवल यह कि बच्ची को इस ख्याल से पाला हो, वरन् इस बेचारी को भी बराबर इसी धोखे में रखा ?

दाया—हाय !

टेंपलर—अरे ! नातन भी ऐसा कर सकता है ?—क्या यह बुद्धिमान् नातन, सज्जन नातन भी ऐसा कर सकता है कि प्रकृति की ध्वनि को इस प्रकार घोंट कर दबा दे; और किसी के आंतरिक भाव को ऐसे ग़लत रास्ते पर डाल दे, कि यदि उसको अधिकार दिया जाता तो वह कभी इसके बताये हुए रास्ते पर न चले ! दाया, तुम जो कुछ कह रही हो कुछ साधारण बात नहीं है, बड़ी भारी बात है, और उसके परिणाम भी बड़े भारी और महत्वपूर्ण हो सकते हैं। मेरे तो होश ठीक नहीं। और समझ में नहीं आता कि अब इस समय मेरा कर्त्तव्य क्या है। मुझे ज़रा ध्यान करने के लिए समय दो—अब तुम जाओ। कदाचित् वह

फिर यहाँ से होकर जायेगा। ऐसा न हो यकायक हमें आ पकड़े।

दाया—ऐसा हुआ तो मेरे प्राण न बचेंगे।

टेंपलर—अब मुझसे तो उससे बात न की जायेगी। यदि तुम्हें मिल जाय तो मेरी ओर से उससे इतना कह देना कि अब हम लोग सलाहुद्दीन ही के यहां मिलेंगे।

दाया—देखिए, ऐसा न हो कि उसके सामने आक्षेप या दोषारोपण की बात आपके मुँह से निकल जाय। अभी ज़रा इस रहस्य को छिपाये ही रखना उचित है। इससे यह होगा कि यदि भविष्य में कोई उपाय न बन सका तो हम उस पर ज़ोर डाल सकेंगे। रही रीशा, सो उसके विषय में आप कुछ सोच विचार न करें। परन्तु सुनिए, महाशय जब आप उसे अपने पश्चिमी जन्मभूमि को ले जाने लगें तो मुझे यहां छोड़ कर न जाइएगा।

टेंपलर—अच्छा, यह सब तो फिर देखा जायेगा। अब तुम जाओ।

चौथा अंक ।

पहला दृश्य ।

मठ की कोठरियां और बरामदे । मठ के संन्यासी,

और कुछ देर के बाद टेंपलर ।

संन्यासी—[दिल में] हाँ, मठाधीश बिल्कुल ठीक कहता है । परन्तु उसने जो काम मुझे करने को दिया था वही क्या हुआ है जो और कुछ भी होगा । मेरी समझ में नहीं आता कि वह मुझ जैसे आदमी से ऐसे काम क्यों कराता है । न मुझे बातें बनानी आती है । न मैं लोगों को बहका फुसला सकता हूँ, और न मुझसे यह होगा कि बिना कारण ही लोगों के फटे में पांव अड़ाऊँ । मैं क्यों बिना अधिकार के किसी की बात में पड़ूं ? क्या मैंने सब संबंध छोड़ छाड़ कर इसी लिये संसार से संन्यास लिया था कि मैं औरों के काम कर कर के संसार में और भी ज्यादा फँस जाऊँ ?

टेंपलर—[जल्दी २ से आते हुए ।] अरे मियाँ भाई, तुम यहां फिर रहे हो ! मैं बड़ी देर से तुम्हें ढूँढ रहा हूँ ।

संन्यासी—मुझे, महाशय ?

टेंपलर—क्यों, क्या मुझे भूल गये ?

संन्यासी—नहीं, महाशय, भूला तो नहीं। परंतु मैं समझता था कि अब आपके दर्शन अभी न होंगे। सच यह है कि मैं परमात्मा से प्रार्थना भी यही कर रहा था कि अब आपके दर्शन भी न हों। परमात्मा ही अच्छी तरह जानता है कि मुझे बाध्य होकर आप जैसे व्यक्ति से जो प्रस्ताव करना पड़ा था उससे मुझे कैसी कुछ घृणा है। परमात्मा साक्षी है, कि मैं स्वयं भी यह नहीं चाहता था कि आप मेरी बात मान लें। और मैं उस समय अपने दिल में बहुत ही प्रसन्न हुआ जब आपने निःशंक वह काम करना अस्वीकार कर दिया था जो निस्संदेह एक नाइट की मर्यादा के विरुद्ध था। परंतु आप अब फिर आये हैं। जान पड़ता है आप पर प्रभाव पड़ ही गया।

टेंपलर—तुम्हें मालूम है मैं किस लिए आया हूँ ? मुझे तो मालूम भी नहीं।

संन्यासी—संभवतः आपने इस बात पर ध्यान किया है और इस विचार पर पहुँचे हैं कि मठाधीश का यह

ख़याल अन्याय नहीं है कि उसके विचारद्वारा धन और नाम दोनों प्राप्त हो सकते हैं—और यह कि शत्रु फिर शत्रु ही है, चाहे उसने कई बार हमारे प्राण बचाये हों।—संभवत: आपने इन सब बातों पर अच्छी तरह ध्यान किया है और अब मठाधीश को सहायता देने आये हैं। हा परमात्मन्!

टेंपलर—भले आदमी! निश्चिंत रहो। न तो मैं इस लिए आया हूँ, और न मुझे मठाधीश से मिलने की आवश्यकता है। जिस विषय का तुम उल्लेख कर रहे हो उसके संबंध में मेरे विचार में अब तक कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है। अब चाहे मुझे सारी पृथ्वी का माल क्यों न मिल जाये, परंतु यह नहीं हो सकता कि तुम जैसे पुण्यात्मा और पवित्रात्मा ने मेरे संबंध में जो ऐसा अच्छा विचार प्रकट किया है वह बदल जाय। इस समय मैं केवल इसलिए आया हूँ कि मुझे एक विशेष विषय में मठाधीश से परामर्श करना है।

संन्यासी—[भयभीत होकर चारों ओर देखते हुए] क्या! तुम, और मठाधीश से परामर्श लो? नाइट भी पादरी से परामर्श किया करते हैं?

टेंपलर—हाँ, विषय ही ऐसा है कि पादरी से परामर्श की आवश्यकता है।

संन्यासी—परन्तु पादरी मर जाय तब भी किसी नाइट से परामर्श न करेगा, चाहे उस विषय का नाइट से कितना ही संबंध क्यों न हो।

टेंपलर—इसका कारण यह है कि मठाधीश को भ्रम का अधिकार भी प्राप्त है—और हम नाइट लोगों को उनके इस अधिकार पर कभी ईर्षा नहीं होती। मैं जानता हूँ कि यदि स्वयं अपने लिए कोई कोई कार्यपद्धति आरंभ करनी होती, या मैं स्वयं ही अपनी कार्यपद्धति का उत्तरदायी होता तो मैं मठाधीश की कुछ भी परवा न करता, परंतु कुछ विषय ऐसे हैं कि मैं समझता हूँ कि यदि उनके संबंध में दूसरों से परामर्श करके अपना काम बिगाड़ भी लूँ तब भी इससे अच्छा है कि मैं स्वयं अपने विचार से काम करूँ तब भी, मुझे तो यह मालूम होता है कि मत केवल सांप्रदायिक भाव और धर्मांधता का नाम है, और मनुष्य किसी विषय में चाहे वह कितनी ही उदारता से ध्यान करे फिर भी बिल्कुल बेजाने वह उसी विचार शैली का अनु-मोदन करता है जिसका वह स्वयं अनुगत है। और संसार

का नियम भी यही होने के कारण कदाचित् यही ठीक भी है।

संन्यासी—मैं इस विषय में कुछ नहीं कह सकता, कारण आपकी बातें मेरी समझ ही में नहीं आईं।

टेंपलर—[दिल में] हाँ, सचमुच, मुझे यह सोच लेना चाहिये कि मेरा असली उद्देश क्या है। मैं केवल परामर्श चाहता हूँ, अथवा स्पष्ट आज्ञा ? मुझे केवल परामर्श की आवश्यकता है, या कोई निर्णय आवश्यक हैं। [संन्यासी से] संन्यासी जी ! मैं आपका अत्यंत कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे यह बात समझा दी। मठाधीश को अलग रखो, अब तुमही मेरे मठाधीश बन जाओ। और यदि मैं उससे भी यह बात पूछता तो केवल इस विचार से कि वह ईसाई है। उसके मठाधीश होने न होने से मुझे कोई संबंध नहीं। बात यह है कि—

संन्यासी—नहीं, महाशय, अब आगे और कुछ न कहिए। आप ने मेरे संबंध में धारणा बनाने में न्याय नहीं किया। मनुष्य जितना अधिक विद्वान होता है। उतनी ही उसकी चिंताएँ भी अधिक होती हैं। और मैंने तो, महाशय, यह शपथ करली है कि सिवा एक चिंता के और

किसी चिंता को पास न आने दूँ। यह लीजिए! अच्छा हुआ, वह देखिए वह स्वयं चला आ रहा है। बस अब यहीं खड़े रहिए। वह आप को देख चुका है।

दूसरा दृश्य ।

मठाधीश, जो बड़े ठाठ से पादरियों की शान लिये हुए बरामदे में चला आ रहा है । संन्यासी, टेंपलर ।

टेंपलर—मैं इससे अलग ही रहूँ तो अच्छा है—मुझे ऐसे आदमियों की कोई आवश्यकता नहीं । कैसा हट्टा कट्टा लाल सफ़ेद हो रहा है । यह तो बिल्कुल रंगीला सा पादरी मालूम होता है, ठाठ तो देखो ज़रा ।

संन्यासी—नहीं, महाशय, इस समय तो क्या है, कहीं उसे उस समय देखिए जब यह दरबार से आया करता है—इस समय तो यह किसी बीमार के पास से होकर आ रहा है ।

टेंपलर—वहां तो उसके ठाठ के सामने सलाहुद्दीन की भी कोई गिनती नहीं रहती होगी ।

मठाधीश—[निकट आते हुए संन्यासी को इशारा करता है ।] यह वही टेंपलर है न ? क्या विचार हैं इसके ?

संन्यासी—मुझे मालूम नहीं ।

मठाधीश—[टेंपलर की ओर बढ़ता है, और उसके भृत्य-वृंद और संन्यासी पीछे को हट जाते हैं ।] कहो नाइट

महाशय ! मैं तुम जैसे बहादुर युवक को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। तुम तो अभी बिल्कुल युवक हो। परमात्मा की कृपा से आशा है कि तुम्हारे द्वारा कोई न कोई काम बन ही जायगा।

टेंपलर—महाशय, मुझसे जो कुछ अब तक हो सका है, इससे अधिक और क्या हो सकेगा ?—नहीं, वरन् कम ही हो तो हो।

मठाधीश—मेरी तो यही प्रर्थना है कि ऐसा धर्मभीरु नाइट हमारे प्रिय धर्म के लिए और परमात्मा के पवित्र उद्देश्य के सिद्ध करने के लिए बहुत दिनों सकुशल जीवित रहे। और ऐसा अवश्य होकर रहेगा, यदि केवल वह अपनी युवावस्था की बहादुरी और अपने बुढ़ापे के अनुभव से शिक्षा प्राप्त करे। कहिए, महाशय, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

टेंपलर—वही जिससे मैं इस यौवनावस्था में बंचित हूँ—उपदेश।

मठाधीश—हाँ, अवश्य—परंतु उपदेश के अनुसार कार्य भी तो होना चाहिए, महाशय।

टेंपलर—अंधों की तरह तो कार्य नहीं होना चाहिए।

मठाधीश—अंधों की तरह कार्य करने को किसने कहा है?—यह ठीक है कि परमात्मा ने मनुष्य को जो बुद्धि दी है उसे हर उचित अवसर पर अवश्य काम में लाना चाहिए—परंतु क्या प्रत्येक अवसर इसके लिए उचित होता है?—नहीं, कदापि नहीं—जैसे अब जब कि परमेश्वर अपने किसी विशेष दूत, अर्थात् अपने पवित्र शब्द के किसी सेवक द्वारा अपने अनुग्रह और कृपा से ऐसी चेष्टा बताना चाहता है जिसमें सारे ईसाई संसार और उसके पवित्र मंदिर की भलाई है—तो ऐसी अवस्था में किसे यह साहस हो सकता है कि अपनी बुद्धि के भरोसे उस पवित्र पुरुष की इच्छा में जो स्वयं बुद्धि का सृष्टिकर्त्ता है, किसी प्रकार दम मारे? किस की क्षमता है कि अपनी बुद्धि और समझ के बल पर उस परम शक्तिशाली परमात्मा के सनातन धर्म को जाँच सके? अच्छा, अब यह बताइए कि आप किस विषय में मेरा उपदेश चाहते हैं?

टेंपलर—महाशय, कल्पना कीजिए कोई यहूदी है, और उसके एक लड़की है जिसे उसने बड़े प्रेम से हर प्रकार की सेवा करके पाल-पोष कर बड़ा किया है। और उसे वह अपने प्राणों से अधिक प्यार से रखता है, और वह लड़की भी

उसकी बड़ी सेवा शुश्रूषा और प्रेम करती है। समझ लीजिए कि हममें से किसी को यह मालूम हो जाय कि वह लड़की उस यहूदी की बेटी नहीं है वरन् वह उसे कहीं बचपन ही में मिल गई थी—उसने ख़रीदा था या वह चुरा लाया था या जो कुछ भी हुआ हो—और यह कि वह सचमुच एक ईसाई लड़की थी, और नियमित रूप से बप्तिस्मा ले चुकी थी। परन्तु उस यहूदी ने केवल यह कि यहूदियों के मतानुसार उसका पालनपोषण किया, वरन् अब भी उसे यहूदी और अपनी लड़की बनाकर रख छोड़ा है। तो बताइए कि ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिए।

मठाधीश—मुझे तो सुन कर डर मालूम होता है!—परन्तु आप यह तो बताइए कि यह जो बातें आपने बताई हैं, यह कोई सच्ची घटना है या आपने केवल एक कल्पित बात उपस्थित की है? आपने ऐसी घटना की कल्पना ही कर ली है या सचमुच ऐसा हुआ है और हो रहा है?

टेंपलर—मैंने यह बात इसलिए उपस्थित की कि इसके संबंध में महाशय का विचार जान सकूं। महाशय को इससे क्या मतलब है कि यह ठीक घटना है या कल्पित गल्प है।